



भारत में प्रारम्भिक भाषा तथा साक्षरता



2016

प्रारंभिक शिक्षा और साक्षरता के इस दृष्टि पत्र को बनाने वाले केन्द्रीय तकनीकी समूह के सदस्य

प्रोफेसर ए. के. जलालुद्दीन, अध्यक्ष, एमेरिटस प्राध्यापक, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय

सुश्री अंजलि नोरोन्हा, एकलव्य

डॉ. भवानी पर्पिया, कनेक्टीव

डॉ. धीर झिन्ग्रन, लैंग्वेज एंड लर्निंग फाउंडेशन

श्री कमलेश जोशी, अजीम प्रेमजी फाउंडेशन

सुश्री कीर्ति जयराम, ऑर्गनाइजेशन फॉर अर्ली लिटेरेसी प्रमोशन

सुश्री मीनल शारदा, यूनीसेफ इंडिया

डॉ. मिनाती पांडा, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय

डॉ. रेखा शर्मा सेन, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

डॉ. रेणु सिंह, यंग लाइव्ज इंडिया

डॉ. संध्या परांजपे, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद
(पूर्व प्राध्यापक – एनसीईआरटी)

श्री सर्वेन्द्र विक्रम सिंह, एससीईआरटी, उत्तर प्रदेश

डॉ. शैलजा मेनन, अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय

श्री सौरव बनर्जी, रूम टू रीड

डॉ. सुमन सचदेव, केयर इंडिया

सुश्री सुनीशा आहूजा, मानव संसाधन विकास मंत्रालय

डॉ. सुनीता सिंह, अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. 0षा शर्मा, एनसीईआरटी

प्रोफेसर विनीता कौल, अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली

इस दृष्टि पत्र की लेखिकाएं

सुश्री मीनल शारदा, यूनीसेफ इंडिया

डॉ. रेखा शर्मा सेन, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

डॉ. शैलजा मेनन, अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलोर

डॉ. सुमन सचदेव, केयर इंडिया

डॉ. सुनीता सिंह, अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रोफेसर विनीता कौल, अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली

इस दृष्टि पत्र के निर्माण की समन्वयक

डॉ. सुनीता सिंह, अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली

समीक्षा

इस दृष्टि पत्र पर अपनी मूल्यवान टिप्पणियां देने के लिए लेखकगण निम्नलिखित समीक्षकों को धन्यवाद देते हैं

सुश्री, मधु रंजन, यूएसएआईडी

प्रोफेसर ऐमेरिता मैक्सीन बर्नटसन, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, हैदराबाद

प्रोफेसर रोहित धनकर, अ प्रेमजी विश्वविद्यालय

EDITING ASSISTANCE

Ms. Bhavani Parpia, ConneCTeach

We thank Dr. Geeta Verma and S. Gayathri, CARE India for their valuable suggestions and support for the development of the position paper.



य व ब य व च
 में ल ख छ क व ह
 नि र रु क ल व स छ व ह
 श प ख व ज क विद्या क ह
 मुर्गा और लोमड़ी की दोस्ती थी क ह
 खुश हो जाओ क ह
 न ल क ह



विषय—सूची

प्रस्तावना	7
कार्यकारी सार संक्षेप	9
1. भूमिका	13
1.1 पृष्ठभूमि और तर्काधार	13
2. इस दृष्टि पत्र की जरूरत	19
2.1 मौखिक भाषा और साक्षरता	20
2.2 श्रोता समूह	21
2.3 उद्देश्य	21
3. बच्चों के भाषा और साक्षरता सीखने को निर्धारित करने वाले संदर्भ	23
3.1. विकासात्मक संदर्भ	23
3.2. सामाजिक और भाषाई संदर्भ	28
3.3. पाठ्यक्रम संबंधी संदर्भ	32
4. भाषा तथा साक्षरता शिक्षा के लक्ष्य	35
5. प्रारंभिक भाषा तथा साक्षरता विकास के नितांत आवश्यक पहलू	39
5.1. मौखिक भाषा और शब्दावली	40
5.2. लिखित सामग्री के साथ जुड़ाव	40
5.3. ध्वनि, चिन्ह और शब्द	41
5.4. समझना और अभिव्यक्ति	43
5.5. भाषा और साक्षरता कौशलों का आकलन	45

6. भाषा तथा साक्षरता की पद्धतियां	47
6.1. पश्चिम में भाषा और साक्षरता शिक्षा	48
6.2. भाषा तथा साक्षरता के सिद्धांतों की प्रमुखता	50
6.3. साक्षरता/भाषा शिक्षण की अच्छी पद्धति के सिद्धांत	53
6.4. कुछ कार्यक्रमों से सीखना	55
7. निहितार्थ	57
7.1. नीति निर्माता	58
7.2. पाठ्यक्रम बनाने वाले	59
7.3. शिक्षकों के शिक्षक और शिक्षक	59
7.4. माता-पिता और समुदाय	61
REFERENCES	63
परिशिष्ट	75

प्रारंभिक भाषा और साक्षरता दृष्टि पत्र को बनाने का उद्देश्य भारत में 3–8 साल के आयु वर्ग के बच्चों की प्रारम्भिक भाषा और साक्षरता से जुड़ी समस्याओं को उनकी बारीकियों सहित सामने रखना था। यह भाषा से जुड़े पिछले नीति दस्तावेजों पर आधारित होते हुए भी, उनसे आगे बढ़ते हुए उन मुद्दों पर नई स्थितियों को सामने रखता है जिनकी पहले विस्तार से चर्चा नहीं हुई है। अब तक, ऐसा कोई दस्तावेज नहीं बना है जो भाषा व साक्षरता के क्षेत्र में 3–6 वर्ष के पूर्व-प्राथमिक आयु वर्ग के साथ स्कूली शिक्षा के प्रारंभिक वर्षों (6–8 वर्षों) के जुड़ाव की निरन्तरता को प्रभावी ढंग से व्यक्त करता हो।

यह दस्तावेज एक परामर्श-आधारित और सहयोगपूर्ण प्रक्रिया के माध्यम से बनाया गया है। सबसे पहले इस विचार को मूर्त रूप सेंटर फॉर अर्ली चाइल्डहुड एंड डेवेलपमेंट (सीईसीडी) और केयर इंडिया द्वारा फरवरी 2014 में आयोजित एक परामर्श कार्यक्रम में दिया गया था। इस दृष्टि पत्र को बनाने के लिए विशेषज्ञों के सामने एक अवधारणा टिप्पणी प्रस्तुत की गई। बाद में उसी वर्ष सीआईएसएसडी और यूएसआईडी ने साथ मिलकर “स्टार्ट अर्ली : रीड इन टाइम” परियोजना पर काम किया जिसके तहत एक तकनीकी कोर ग्रुप (टीसीजी) का निर्माण किया गया। इस प्रक्रिया में सदस्यों ने स्वेच्छा से भाग लिया। नवंबर 2014 में, दृष्टि पत्र का पहला प्रारूप टीसीजी सदस्यों के सामने रखा गया। सदस्यों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर इस प्रारूप में कुछ बदलाव किए गए और फरवरी 2015 में टीसीजी सदस्यों के सामने एक और प्रारूप पेश किया गया। देश के बहुभाषाई ताने-बाने को मद्देनजर रखते हुए भाषा तथा साक्षरता के लक्ष्यों को कैसे हासिल करना है और क्या रुख अपनाना है इसे लेकर विशेषज्ञों में काफी बहस हुई। अप्रैल 2015 में टीसीजी सदस्यों के एक छोटे समूह ने दृष्टि पत्र पर स्वैच्छिक रूप से काम किया। एक दो-दिवसीय कार्यशाला आयोजित की गई जिसमें इन मुद्दों पर बहस और चर्चा की गई। आखिरकार, दृष्टि पत्र को फिर से



लिखा गया और जून 2015 में टीसीजी सदस्यों के सामने रखा गया। सदस्यों ने दृष्टि पत्र द्वारा चिन्हित किए गए मुद्दों को उचित सन्दर्भ में रखने के लिए फिर अपनी प्रतिक्रियाएं दीं।

इसके उपरांत इस दृष्टि पत्र की विभिन्न शिक्षाविदों एवं विशेषज्ञों द्वारा समीक्षा की गई, और इसमें उनके विचारों एवं सुझावों को सम्मिलित किया गया।

एक प्रमुख विचार, जो इस दस्तावेज को अन्य दस्तावेजों से बिलकुल अलग बनाता है, यह है कि इसमें किसी एक "तरीके" या दूसरे तरीके की वकालत करने के बजाय "सिद्धांत आधारित पद्धति" की वकालत की गई है। इस दृष्टि पत्र की कल्पना एक ऐसे दस्तावेज के रूप में की गई है जो नीति निर्माताओं और शिक्षाविदों (शिक्षकों और अकादमिक विद्वानों) को जानकारी से पूर्ण ऐसे कुछ कार्य तैयार करने में मदद करेगा जो छोटे बच्चों के भाषाई विकास और साक्षरता के सिद्धांतों पर आधारित होंगे।

कार्यकारी सार—संक्षेप

शुरुआती बचपन (जन्म से 8 वर्ष तक की उम्र) बच्चे के विकास का एक नाजुक दौर होता है, और बाद के वर्षों के शैक्षिक परिणामों के लिहाज से, खासतौर से भाषा और साक्षरता के सन्दर्भ में, यह बहुत महत्वपूर्ण दौर होता है। यह दृष्टि पत्र इस प्रश्न को उठाता है कि हमारे देश में 3–8 साल तक के बच्चों की भाषा और साक्षरता शिक्षा को बेहतर कैसे बनाया जाए। ऐसा इसलिए क्योंकि शिक्षा के संवाद को पहुँच से गुणवत्ता की ओर ले जाने की चुनौती भारत के शिक्षा जगत के सामने खड़ी है। यह दृष्टि पत्र स्कूली शिक्षा के प्रारंभिक वर्षों (6–8 साल की उम्र) को 3–6 साल तक के पूर्व-प्राथमिक आयु वर्ग का ही विस्तार मानता है, और दोनों को क्रमिक मानकर विचार करता है। इस दृष्टि पत्र की कल्पना ऐसे दस्तावेज के रूप में की गई है जो छोटे बच्चों के भाषा व साक्षरता के विकास के क्षेत्र में जानकारी युक्त कुछ प्रक्रियाएं विकसित करने में नीति निर्माताओं और शिक्षाविदों (शिक्षकों और अकादमिक विद्वानों) की मदद करेगा। वर्तमान में, देश में ऐसा कोई दृष्टि पत्र नहीं है जो सिर्फ और सिर्फ शुरुआती साक्षरता से जुड़े मुद्दों पर ध्यान देता हो।

छोटे बच्चों को पढ़ना और लिखना सीखने के लिए “तैयार” नहीं माना जाता। अभी तक कक्षाओं के भीतर बहुभाषिकता का संसाधन के रूप में उपयोग नहीं किया जा सका है, साथ ही मौखिक व लिखित भाषा के बीच की निरन्तरता के संबंधों को भी समझा नहीं जाता और ज्यादातर उनकी अनदेखी कर दी जाती है। बच्चों को उनके शुरुआती बचपन में पढ़ाने वाले शिक्षकों की इन मुद्दों में बड़ी अहम भूमिका होती है। ये लोग शिक्षक प्रशिक्षण तथा कक्षा की प्रक्रियाओं व पद्धतियों, दोनों के सन्दर्भ में भाषाई और साक्षरता शिक्षा के पूर्व-प्राथमिक तथा प्राथमिक वर्षों को सबल बना सकते हैं। इस दृष्टि पत्र में हम यह दृष्टिकोण अपना रहे हैं कि साक्षरता अपने आप में साध्य नहीं है, बल्कि यह अधिकांश अन्य बातों को सीखने का तथा सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण का साधन है। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि अधिकांश भारतीय बच्चे ऐसे होते हैं जिनका बचपन किताबों के बीच नहीं बीतता, फिर भी



उनके पास ज्ञान और कौशल का भंडार हो सकता है, शुरूआती बचपन के शिक्षकों के लिए एक प्रमुख चुनौती यह है कि साक्षरता की ऐसी अवधारणाओं को किस प्रकार व्यक्त किया जाए जो इन बच्चों के मौखिक भाषा कौशलों को तो बहुत महत्व देती ही हों, पर फिर भी पढ़ने लिखने के साथ लगाव वाले संबंध बनाती हों। इस प्रकार, साक्षरता की अवधारणाओं को इस रूप में देखे जाने की जरूरत है कि वे विद्यार्थियों को केवल लिपि के संकेतों (उनके अर्थ सहित, या बिना अर्थ के) को लिखना और पढ़ना सिखाने के अलावा, उनके मौखिक भाषा कौशलों को आगे निर्मित करें। हमारा मानना है कि पढ़ने और लिखने के कौशल का विकास भाषा तथा साक्षरता शिक्षा का आवश्यक लक्ष्य तो है, परन्तु यह उसका पर्याप्त लक्ष्य नहीं है। इसका मुख्य लक्ष्य समाज में सक्षम और सार्थक भागीदारी के लिए विद्यार्थियों को भाषा तथा साक्षरता के कौशलों और प्रक्रियाओं का उपयोग करने योग्य बनाना होना चाहिए। भारत जैसे सामाजिक रूप से अत्यधिक स्तरों में बँटे हुए समाज में, इसका मतलब भाषा और साक्षरता का उपयोग करने के सांस्कृतिक रूप से शक्तिशाली तरीकों तक हमारे अनेक विद्यार्थियों की पहुँच निर्मित करना होगा।

यह दृष्टि पत्र ऐसे कई तत्वों की पहचान करता है जिनकी भाषा और साक्षरता सीखने की इस प्रक्रिया में केन्द्रीय भूमिका होती है। इनमें मौखिक भाषा तथा शब्दावली का विकास, लिखित भाषा के साथ काम करना (छपी हुई भाषा का बोध, उसका बच्चों के साहित्य से संबंध), ध्वनियाँ, लिपिचिन्ह तथा शब्द खोनिमिक बोध (ध्वनि इकाइयों का बोध), फोनिक्स (ध्वनियों और अक्षरों का परस्पर संबंध), अक्षर ज्ञान, तथा शब्दों को पहचानना,, समझना और अभिव्यक्ति (समझना, प्रवाह, लिखना) तथा भाषा और साक्षरता कौशलों का आकलन, आदि शामिल हैं। इन तत्वों को ऐसे स्वतंत्र और उत्साही पढ़ने वाले तैयार करने के व्यापक सन्दर्भ से जोड़ने की जरूरत है जो हमारे समाज में समर्थ और सार्थक तरीके से भागीदारी करने के काबिल हों। इसके अलावा, यह भी ध्यान में रखना बेहद जरूरी है कि इन कौशलों को एक साथ, न कि क्रमिक रूप से, सिखाए जाने की जरूरत है।

इस दृष्टि पत्र में, हमारा दृष्टिकोण है कि भाषा और साक्षरता सिखाने के लिए विशेष पद्धतियों की तलाश करने के बजाय, ठोस, सार्थक सिद्धांतों को खोजना ज्यादा फलदायक होता है। सिद्धांत उस आदर्श कल्पना या लक्ष्यों को जिनकी ओर हम बढ़ रहे हैं, सिखाने और सीखने के सन्दर्भों को, तथा उन लक्ष्यों को हासिल करने के प्रभावकारी साधनों को ध्यान में रखते हैं। इस दृष्टि पत्र में रेखांकित किए गए कुछ सिद्धांत इस प्रकार हैं: (1) मौखिक भाषा को साक्षरता से जोड़ा जाना बेहद जरूरी है और मौखिक भाषा को साक्षरता कौशलों के साथ ही सिखाया जाना चाहिए, (2) अभिव्यक्ति के स्वरूपों की तरह, चित्र बनाने और मुक्त रूप से लिखने पर जोर दिया जाना चाहिए, (3) बच्चों के बहुभाषाई कौशलों को विकसित किया जाना चाहिए, (4) साक्षरता सिखाने और सीखने के लिए नितान्त आवश्यक माने गए प्रत्येक तत्व के सभी पहलुओं को साक्षरता शिक्षा के एक समग्र, और एक साथ कार्य करने वाले प्रतिरूप में समेकित करना जरूरी है, (5) साक्षरता शिक्षा को सामाजिक-सांस्कृतिक तथा सामाजिक-राजनीतिक सन्दर्भ में स्थापित की जाने वाली कार्यविधियों के समूह की तरह देखा जाना चाहिए, क्योंकि साक्षरता कोई "स्वायत्त कौशल" नहीं है, बल्कि वह समाज के सभी पहलुओं से जुड़ी रहती है, (6) साक्षरता की प्रक्रियाओं का स्पष्ट प्रतिरूप तैयार करने में जिम्मेदारियों को धीरे-धीरे बच्चों पर छोड़े जाने वाले ऐसे प्रतिरूप (ग्रेजुअल रिलीज ऑफ

रिसपोन्सिबिलिटी मॉडल) का अनुसरण करना चाहिए जो साक्षरता सिखाने के लिए विभिन्न प्रकार की शैक्षिक दिनचर्याओं, जैसे कि जोर से पढ़ना, प्रतिरूप-आधारित लिखना, साझा रूप से पढ़ना और लिखना, मार्गदर्शन सहित पढ़ने या लिखने की कार्यशाला आयोजित करना, तथा मुक्त रूप से पढ़ना या लिखना, आदि को समाहित करता हो।

इस प्रकार यह दृष्टि पत्र नीति तथा व्यवहार, दोनों स्तरों पर छोटे बच्चों को पढ़ना तथा लिखना सिखाने की प्रक्रिया को समझने के प्रतिमान में एक स्पष्ट बदलाव को रेखांकित करता है। यह नीति निर्माताओं, पाठ्यक्रम विकसित करने वालों, शिक्षक प्रशिक्षकों तथा शिक्षकों, माता-पिताओं और समुदाय के लोगों के लिए कुछ विशेष निहितार्थों को सामने रखता है। इसकी कुछ प्रमुख अनुशासणें इस प्रकार हैं: (1) विद्यार्थियों की संख्या की दृष्टि से कक्षाओं का ज्यादा छोटे आकार की होना, जिनमें सभी कक्षाओं (पूर्वस्कूल तथा कक्षा 1 और 2) के लिए एक-एक समर्पित शिक्षक हो, (2) प्रारम्भिक भाषा और साक्षरता के एक समग्र कार्यक्रम को सहयोग देने के लिए आवश्यक अवधारणात्मक समझ को निर्मित करने की दृष्टि से, शिक्षा विभाग के जिला तथा ब्लाक स्तर के अधिकारियों के लिए परिचय (ओरिएंटेशन)/प्रशिक्षण कार्यशालाएं और शिक्षकों की शिक्षा के कार्यक्रम आयोजित करना, (3) स्तरों के अनुरूप बच्चों के ऐसे साहित्य की उपलब्धता जिसमें बड़े आकार की 'जोर से पढ़ने वाली' किताबें, तथा चार्टों और कार्डों के रूप में अन्य छपी हुई सामग्री शामिल हो, और इन सभी को मातृ भाषाओं, स्थानीय भाषाओं तथा अंग्रेजी में सामाजिक सन्दर्भों को ध्यान में रखते हुए विकसित किया जाए तथा उचित दामों पर सभी स्कूलों को उपलब्ध कराया जाए, (4) कक्षा के भीतर, और बाहर के सामुदायिक क्षेत्र में, आकलन की प्रक्रियाओं में, खास तौर पर पढ़ने के प्रवाह के साथ ही पढ़ने की समझ और समीक्षात्मक सोच को विकसित करने की दृष्टि से, हुए इस दृष्टिगत बदलाव को महत्वपूर्ण योग्यताओं के रूप में समाहित करना चाहिए, (5) पाठ्यक्रम तथा शिक्षण पद्धति की योजना बनाने में, उस क्षेत्र में बोली जाने वाली बहु भाषाओं पर सावधानीपूर्वक विचार करना जरूरी है, (6) कक्षा में सिखाने-सीखने की प्रक्रियाओं के बारे में सामाजिक सन्दर्भों से जुड़ी हुई विभिन्न प्रकार की उच्च-स्तरीय दृश्य-श्रव्य (आडियो-विजुअल) सामग्री को कक्षाओं तथा शिक्षकों की शिक्षा के कार्यक्रमों में शामिल किया जाना चाहिए, (7) राष्ट्रीय तथा राज्य की नीतियों और पाठ्यक्रम की रूपरेखाओं में प्रारम्भिक से प्राथमिक स्तर तक एक निरन्तरता बनाए रखने को समुचित प्राथमिकता दिए जाने की जरूरत है, (8) सभी बच्चों के लिए उनके घरों और स्कूलों के बीच संस्कृति तथा भाषा का तालमेल बैठना बेहद जरूरी है, (9) कक्षाओं में दी जाने वाली शिक्षा का जोर, केवल लिपि संकेतों को लिखने और समझने तक सीमित न होकर, समझ के साथ पढ़ने और समीक्षात्मक सोच विकसित करने पर होना जरूरी है, जिसके लिए विभिन्न प्रकार की रणनीतियों का उपयोग किया जाना चाहिए – जैसे कि कहानी सुनाने जैसी पढ़ने और लिखने के लिए तैयार करने वाली गतिविधियां, मुक्त और मार्गदर्शित बातचीत, तथा भाषाई खेल, शब्दावली का विकास करने और शाब्दिक अभिव्यक्ति को निर्मित करने के लिए तुकान्त कविताएं (राइम्स) और पहेलियां, ध्वनि तथा दृश्य में संबंध जोड़ने वाली गतिविधियां, छपी हुई सामग्री से भरे हुए परिवेश के भीतर स्थानीय भाषाओं की ध्वनियों का बोध और उनकी ओर उन्मुखता होना, आदि, (10) विद्यार्थियों के दृष्टिकोणों और उनकी मान्यताओं की व्यवस्था के बारे में, तथा वे बच्चों के प्रदर्शन को किस तरह प्रभावित करते हैं, इस बारे में शिक्षकों की समझ बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए।

1.1 पृष्ठभूमि और तर्काधार

वर्तमान सैद्धांतिक विमर्श सुझाता है कि मनुष्य के काम करने के अनेक पहलुओं के लिए प्रारम्भिक बचपन (जन्म से लेकर 8 साल की उम्र तक) विकास का एक बेहद महत्वपूर्ण और निर्णायक दौर होता है (हार्वर्ड यूनिवर्सिटी में सेंटर ऑन द डेवेलपिंग चाइल्ड, 2010)। भविष्य के विकास और सीखने की बुनियाद बच्चे की उम्र के उस 3 से 8 वर्ष की अवधि के दौरान ही रखी जाती है जिसमें पूर्व-स्कूल के वर्ष तथा प्रारम्भिक शिक्षा के पहले कुछ वर्ष शामिल रहते हैं। इन वर्षों को अब अधिकाधिक रूप से बाद के वर्षों के शैक्षिक परिणामों, विशेष रूप से भाषा और साक्षरता में हासिल होने वाले परिणामों, के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है (बार्नेट, 1995, ब्राउन 2009, डंकन इत्यादि, 2007, कैनेडी इत्यादि, 2012)। यह दृष्टि पत्र इस प्रश्न पर विचार करता है कि हमारे देश में 3 से 8 साल तक की उम्र के बच्चों की भाषा और साक्षरता शिक्षा को किस तरह बेहतर बनाया जाए।

शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य उन सभी लक्ष्यों को हासिल करना होता है जो पढ़ने और लिखने की योग्यता पर निर्भर करते हैं। भारत की जनगणना (2011) दर्शाती है कि पिछले कई दशकों में, भारत ने इस संबंध में उल्लेखनीय प्रगति की है, जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय साक्षरता दर 1951 में मात्र 18% से बढ़कर 2011 की जनगणना तक 74% से भी अधिक हो गई है (भारत की जनगणना, 2011)। परन्तु, यह अभी भी संसार के अनेक विकासशील देशों से कम है (यूनेस्को, 2012)। देश में 1990 की दशक में आरम्भ किए गए, और तब से लागू किए जा रहे प्राथमिक शिक्षा सुधारों (उदाहरण के लिए, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम, सर्व शिक्षा अभियान, शिक्षा का अधिकार, 2009) की वजह से सारे देश में 6 से 14 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों की स्कूलों तक पहुँच में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है। आंकड़े दर्शाते



हैं कि बच्चों के नामांकनों की दरें 2003 में 89% से 2007 में 93% तक बढ़ गई हैं (भारत सरकार, योजना आयोग, 2010)।

जटिल क्षेत्रों में हर उपलब्धि के साथ नई चुनौतियाँ सामने आती हैं। भारत के शैक्षिक क्षेत्र के सामने अब शिक्षा की पहुँच को शिक्षा की गुणवत्ता तक ले जाने की चुनौती है। कई गैर-सरकारी संगठनों और व्यक्तियों ने देश के विभिन्न भागों में प्रारम्भिक भाषा और साक्षरता शिक्षा पर मौलिक तथा अभिनव कार्य किया है। इस देश के इतिहास के सन्दर्भ में ये उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हैं। परन्तु, इस देश में उच्च-गुणवत्ता वाली भाषा और साक्षरता शिक्षा प्रदान करने के मार्ग में अनेक चुनौतियाँ हैं। इस दृष्टि पत्र का तर्काधार निर्मित करने के लिए इनमें से कुछ समस्याओं का इस खंड में संक्षिप्त परिचय दिया गया है। बाद में उन पर अधिक पूर्णता से चर्चा की जाएगी।

1.1.1 साक्षरता की अवधारणाएं

कुछ चुनौतियों का संबंध इस बात की संकुचित अवधारणाओं से है कि हमारे लिए "साक्षरता" का क्या मतलब है। भारत की जनगणना (2011) द्वारा उपयोग की गई साक्षरता की अवधारणा में हस्ताक्षर कर पाने को, या फिर बिलकुल बुनियादी स्तर पर लिपि के संकेतों को समझने को साक्षर होने का प्रमाण माना गया था। अधिकांश शिक्षक ऐसी समझ से शायद ही संतुष्ट हों (राममूर्ति, 2002)। कुछ लोग साक्षरता को समझ के साथ पढ़ने और लिखने की क्षमता के रूप में देखते हैं जिससे बच्चे स्कूल की अपनी पढ़ाई में सफल हो सकें और भविष्य में नौकरियों के क्षेत्र में उनकी आर्थिक संभावनाएं बेहतर हो सकें। लेकिन, यह अवधारणा भी पूर्ण नहीं है क्योंकि यहाँ साक्षरता को अपने आप में एक साध्य के रूप में देखा गया है। इस दृष्टि पत्र में, हम यह दृष्टिकोण अपना रहे हैं कि साक्षरता अपने आप में कोई साध्य नहीं है बल्कि सीखने योग्य तमाम दूसरी बातों के लिए, तथा सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण के लिए एक साधन है। अगर शिक्षा का उद्देश्य यह है कि वह बच्चों को आधुनिक समाज में अपने पूरे सामर्थ्य से जीने के काबिल बनाए, और वे एक लोकतांत्रिक समाज के नागरिकों के रूप में सक्रिय भागीदारी करने में समर्थ हो सकें, तो साक्षरता को इन लक्ष्यों के साथ जोड़ना होगा और उसे ऐसी व्यापक और पूर्ण अवधारणा के रूप में देखना होगा जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक पहलुओं का समावेश हो। हमारे देश में कई बच्चे न सिर्फ गरीबी में जीते हैं बल्कि उन्हें सामाजिक उत्पीड़न भी झेलना पड़ता है। शिक्षा और साक्षरता को आर्थिक सशक्तिकरण का वाहक होना चाहिए, पर साथ ही इससे ऐसे तरीके और साधन मिलने चाहिए जिनके द्वारा व्यक्तियों और समुदायों के जीवन में मौजूद दमनकारी परिस्थितियों के खिलाफ वे अपनी आवाज उठा सकें, और जहाँ जरूरत हो वहाँ ऐसी परिस्थितियों का विरोध कर सकें, आलोचना कर सकें और उन्हें बदल सकें।

साक्षरता की अन्य अवधारणाओं की पड़ताल करते हुए, हमें इस बात को भी ध्यान में रखना होगा कि बहुत छोटे बच्चे भी उस उम्र में वे रवैए, कौशल, जीवन मूल्य और प्रवृत्तियाँ प्राप्त कर लेते हैं जो बाद के वर्षों में उनकी सफलता में केन्द्रीय भूमिका निभाते हैं। भारतीय बच्चों में एक बड़ा हिस्सा

ऐसे बच्चों का है जो छपी हुई सामग्री से वंचित परिवेशों में बड़े होते हैं, और फिर भी जिनके पास बहुत प्रकार का ज्ञान और कौशल हो सकते हैं। इस तथ्य को देखते हुए छोटे बच्चों के शिक्षकों के सामने एक प्रमुख चुनौती साक्षरता की ऐसी अवधारणाओं को व्यक्त करने की है जो उनके मौखिक भाषा कौशलों को बहुत महत्व देने के साथ ही पढ़ने और लिखने के साथ बच्चों के लगावपूर्ण तथा स्थाई संबंधों को निर्मित कर सकें। इसलिए, साक्षरता की अवधारणाओं को इस तरह देखे जाने की जरूरत है कि वह केवल लिपि के संकेतों को (उनका मतलब समझते हुए, या न समझते हुए) लिखने और पढ़ने तक सीमित न रहकर, विद्यार्थियों के मौखिक भाषा कौशलों के आधार पर उनकी भाषा क्षमता को आगे बढ़ाए। भाषा और साहित्य के सौन्दर्य बोध की सम्भावनाओं की भी इस सन्दर्भ में पड़ताल की जाना चाहिए।

1.1.2 पाठ्यक्रम, शिक्षण पद्धति और शिक्षकों की शिक्षा

कुछ अन्य चिन्ताएं शैक्षिक परिणामों से जुड़ी हुई हैं जो पाठ्यक्रम, शिक्षण पद्धति और शिक्षकों की शिक्षा से जुड़ी बहुत गहरी मौलिक समस्याओं की तरफ इशारा करती हैं। व्यापक स्तरीय आकलन और मूल्यांकन रिपोर्टें (एएसईआर 2012–2013) द्वारा प्रकाशित चिन्ताजनक आँकड़े दिखाते हैं कि हमारे देश में कई बच्चे लिपि को समझने की एकदम बुनियादी योग्यता को भी अर्जित करने में सक्षम नहीं हो पाते। एएसईआर के आँकड़े दर्शाते हैं कि 54% विद्यार्थी पाँचवी कक्षा में आकर भी दूसरी कक्षा की किताब नहीं पढ़ पाते। हालांकि यह रिपोर्ट ग्रामीण इलाकों पर केन्द्रित है, लेकिन एएसईआर (2013) के मुताबिक यही स्थिति शहरी क्षेत्रों में भी है। सर्व शिक्षा अभियान पर योजना आयोग की मूल्यांकन रिपोर्ट के नतीजे दर्शाते हैं कि दूसरी कक्षा के सिर्फ 42% विद्यार्थी अपनी स्थानीयक्षेत्रीय भाषा की लिपि में लिखे हुए अक्षरों को पढ़ने में सक्षम थे। इसी तरह के नतीजे हिमाचल प्रदेश और तमिलनाडु में आयोजित पीआईएसए 2009 की प्रायोगिक गतिविधि (ओईसीडी, 2010) में भी सामने आए हैं, जहाँ पठन क्षमता में भारतीय विद्यार्थियों के अंक निचले स्तर पर हैं। व्यापक स्तर पर हुए इन अध्ययनों की सीमाओं के बावजूद, उनके नतीजे यही दिखाते हैं कि भारत में कई बच्चे पढ़ने और लिखने की बुनियादी योग्यता हासिल करने में भी नाकाम रहते हैं। पढ़ने और लिखने का उपयोग करके व्यक्तिगत जीवन में या समाज के लिए कुछ ऊंचे लक्ष्य हासिल करने की बात तो छोड़ ही दीजिए।

शिक्षक और बच्चों के माता-पिता यह अपेक्षा करते हैं कि बच्चे स्कूल में पढ़ना लिखना सीखेंगे। जब स्कूल में कुछ साल बिताने के बाद भी बच्चे पढ़ना लिखना नहीं सीख पाते तो इसके लिए जिम्मेदार कारणों को कभी-कभी बच्चे में या उसकी पृष्ठभूमि में खोजा जाता है। शिक्षक इस बात पर बहुत कम ही चिंतन करते हैं कि बच्चों के इन निराशाजनक शैक्षिक परिणामों के पीछे कहीं उनके अपने ज्ञान, मान्यताओं, साक्षरता सिखाने की पद्धतियों और अपनाई गई नीतियों का योगदान तो नहीं है।

अधिकांश बच्चों के स्कूली परिवेश साक्षर होने में उन्हें आने वाली मुश्किलों को और बढ़ा देते हैं। पाठ्यक्रम का लचीला न होना, शिक्षा व्यवस्था द्वारा मानक भाषा पर जोर देना, बच्चे की घरेलू भाषा

का अवमूल्यन, बच्चे के साथ 'टैबुला रासा (कोरी स्लेटज) की तरह से व्यवहार करना, बच्चा अपने साथ बोलचाल की भाषा की जो गहरी समझ और अन्य योग्यताएं कक्षा में लेकर आता है उन्हें नजरअंदाज करना, कक्षा में भाषाई विविधता होने की स्थिति को भाषा तथा साक्षरता पढ़ाने के लिए संसाधन के रूप में देखने के बजाय बाधा के रूप में देखना, बच्चे के लिए गए अनुभव के बजाय पाठ्यपुस्तक को प्रमुखता देना तथा कक्षा में बच्चे की आवाज का नदारद रहना – इन सब कारणों की वजह से एक सार्थक प्रक्रिया के रूप में साक्षरता की प्रक्रिया में भागीदार बनने के बजाय बच्चा उससे दूर छिटक जाता है। कैम्बर्न (2000) द्वारा बताई गई 'सीखने की स्थिति' की सारी बातें (तल्लीनता, प्रदर्शन, भागीदारी, अपेक्षाएं, जिम्मेदारी, अनुमान, उपयोग, प्रतिक्रिया) जो वयस्कों द्वारा उस समय तो बड़ी सरलता और जीवंतता से निर्मित कर दी जाती हैं जब शिशु बोलचाल की भाषा को सीखने की प्रक्रिया शुरू करते हैं। पर जब साक्षर होने में बच्चे की मदद करने की बात आती है तो इन सीखने की स्थिति' की बातों से बार-बार समझौता किया जाता है।

इस स्थिति के लिए सिर्फ शिक्षक को ही जिम्मेदार मानना उचित नहीं होगा। दरअसल भारत में व्यवस्था के स्तर पर साक्षरता प्राप्त करने के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रियाओं और नीतियों को समझने की पर्याप्त कोशिश नहीं की गई है। शिक्षकों को अक्सर अशैक्षणिक कामों, जैसे पल्स पोलियो, चुनावी या अन्य ड्यूटियों में लगा दिया जाता है (योजना आयोग, भारत सरकार)। इसके अलावा, शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में शायद ही कभी विद्यार्थी शिक्षकों को बच्चों की भाषा और साक्षरता विकास के तरीकों से जोड़ने पर स्पष्ट रूप से ध्यान केन्द्रित किया जाता हो, न ही ये कार्यक्रम उन्हें प्रारंभिक भाषा और साक्षरता सिखाने की पद्धतियों से पर्याप्त रूप से परिचित करवाते हैं। भाषा और साक्षरता सीखने की प्रकृति की, तथा उन सैद्धांतिक आधार मान्यताओं की गहरी समझ के बिना, जिन पर साक्षरता शिक्षा की विभिन्न पद्धतियां आधारित होती हैं, शिक्षकों के पास कर्मठता से काम करने के लिए, और अलग-अलग विद्यार्थियों तथा उनके समूहों के लिए उपयुक्त शैक्षणिक तरीके चुनने के लिए पर्याप्त ज्ञान संसाधन नहीं होते।

ए यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसपर शिक्षाविदों को तुरंत ध्यान देना चाहिए। पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के शिक्षकों की शिक्षा के रूप में, तथा कक्षा में होने वाली प्रक्रियाओं और गतिविधियों के रूप में, दोनों तरह से, पूर्व-प्राथमिक तथा प्राथमिक स्कूल के वर्षों में भाषा तथा साक्षरता शिक्षा को मजबूती देने के द्वारा, इन समस्याओं का समाधान करने में बड़ी भूमिका निभाई जा सकती है।

1.1.3 बहुभाषाई शैक्षिक सन्दर्भ

समस्याओं की एक तीसरी फेहरिस्त भारत की समृद्ध, बहुभाषीय संरचना से जुड़ी है जो शैक्षिक नीति-निर्माण, और अध्यापन से जुड़ी निर्णय प्रक्रिया के लिए हतोत्साहित करने वाली चुनौती बनी हुई है। भारत में 1500 से ज्यादा मातृभाषाएं हैं, जिनमें से 122 प्रमुख भाषाओं के रूप में गिनी जाती हैं (वनिश्री, 2011)। इनमें से, सिर्फ 41 को स्कूलों में पढ़ाया जाता है, और सिर्फ 33 ऐसी हैं जो प्राथमिक स्कूलों में शिक्षा का माध्यम हैं (मल्लिकार्जुन, 2004)। इसके अलावा, जमीनी हकीकत

भी काफी पेचीदा है, क्योंकि विविधता से भरी भाषाओं को भी एक क्षेत्रीय भाषा में समा दिया जाता है। उदाहरण के लिए, हिन्दी के मामले में, ऐसी लगभग 20 भाषाएं हैं जिन्हें हिन्दी के अंतर्गत वर्गीकृत कर दिया गया है। 1991 में इनमें से प्रत्येक भाषा को बोलने वालों की संख्या 10 लाख से अधिक थी। इनमें भोजपुरी (2.31 करोड़ बोलने वाले), छत्तीसगढ़ी (1.06 करोड़), राजस्थानी (1.33 करोड़) इत्यादि भाषाएं शामिल थीं। इनमें से कई भाषाओं का लिखित रूप भी है और व्यापक साहित्य भी है। अब कक्षा के भीतर इसका परिणाम ऐसे कई बच्चों की परेशानी के रूप में सामने आता है जिनकी मातृभाषा तो "हिन्दी" होती है पर वे पाठ्यक्रम में इस्तेमाल की जाने वाली हिन्दी को नहीं समझ पाते (झिग्रान, 2005)। इसका अर्थ यह है कि स्कूल आने वाले कई बच्चों की घरेलू भाषा और बोली स्कूल में उपयोग की जाने वाली भाषा से अलग होती है। शुरुआती बचपन की परिस्थिति में यह स्थिति खास तौर पर सामने आती है क्योंकि तब बच्चे पहली बार घर से स्कूल के परिवेश में दाखिल होते हैं। इसके अलावा, विद्यार्थी अपनी समझ व्यक्त करने के लिए दो भाषाओं के शब्दों को अदल बदल करके प्रभावी उपयोग भी करते हैं (ट्रांस-लैंग्वेजिंग) (गार्शिया, 2009, 2011), पर इसके लिए पाठ्यक्रम में कोई जगह नहीं होती।

भारतीय स्कूलों की कक्षाओं में बहुभाषाई समस्या का समाधान ढूंढने के लिए कई नीति दस्तावेज बनाए जा चुके हैं। कोठारी आयोग (1966) ने त्रिभाषा सूत्र की अनुशंसा की थी, लेकिन इसे कक्षाओं में व्यावहारिक रूप से अपनाने में काफी दिक्कतें आईं। हाल के वर्षों में, भारतीय भाषाओं के शिक्षण के राष्ट्रीय फोकस समूह (2006) तथा राष्ट्रीय शुरुआती बचपन देखरेख एवं शिक्षा नीति (ईसीसीई) (2009) ने अनुशंसा की है कि ईसीसीई शिक्षा कार्यक्रमों में बच्चों के सीखने-सिखाने की भाषा उनकी मातृभाषा/घर की भाषा/स्थानीय भाषा होनी चाहिए, और साथ ही साथ तमाम दूसरी भाषाओं के साथ बच्चों का सार्थक ढंग से परिचय कराया जाना चाहिए। लेकिन, वैश्वीकरण के युग में लोगों की आर्थिक आकांक्षाओं के चलते हकीकत में शिक्षा का माध्यम, खासतौर से निजी स्कूलों में, अंग्रेजी बनती जा रही है। और अक्सर अंग्रेजी ऐसे शिक्षकों द्वारा पढ़ाई जाती है जो खुद उसमें दक्ष नहीं होते। हमारे समाज के इस बदलाव के तमाम स्तरों (सांस्कृतिक, राजनैतिक, शैक्षणिक और व्यक्तिगत) पर महत्वपूर्ण आशय निकलते हैं।

ईसीसीई (ECCE) के नजरिये से देखें तो शुरुआती बचपन के शैक्षिक परिवेशों से की जाने वाली अपेक्षाएं, सिर्फ मौखिक से लिखित संस्कृति तक जाने को सुगम बनाने तक सीमित नहीं हैं। आदर्श रूप में, इन परिवेशों पर विभिन्न मौखिक भाषाओं और बोलियों हेतु मार्गदर्शन करने, अक्सर बिना किसी लिपि वाली भाषाओं और बोलियों और उनके लिए अपर्याप्त रूप से तैयार शिक्षकों के साथ समझ के रास्ते विकसित करने में बच्चों की सहायता करने की जिम्मेदारी भी होती है।

¹ Trans-linguaging is the practice by bilinguals where two or more languages are interchangeably used in a fluid and flexible way to convey meaning (Garcia, 2009)

1.1.4 प्रारंभिक वर्षों में साक्षरता पर ध्यान नहीं दिया जाना

ईसीसीई नीति के तहत सब बच्चों को ईसीसीई परिवेश में शिक्षा मिलने की सोच निहित है। भारत में 3-6 वर्ष के आयुवर्ग में 158.7 करोड़ बच्चे हैं (जनगणना 2011), और ये बच्चे संभावित रूप से इस नीति के द्वारा स्थापित शिक्षा की सार्वभौमिक पहुँच का लाभ उठा सकेंगे। पर, तब भी शुरूआती बचपन के सरकारी शिक्षा संस्थानों को केवल दिन के दौरान देखभाल करने और पूरक पोषण प्रदान करने वाले शिशु घरों की तरह देखा जाता है, और सबसे अच्छे नजरिए में उन्हें बच्चों के लिए अनुकूल तथा उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में प्रोत्साहित करने वाले स्थानों की तरह देखा जाता है। भाषा और साक्षरता शिक्षा की कल्पना और उसके उद्देश्यों की कोई स्पष्ट और सुदृढ़ अभिव्यक्ति शुरूआती बचपन के परिवेशों में नहीं होती। छोटे बच्चों को पढ़ना और लिखना सीखने के लिए "तैयार" विद्यार्थियों की तरह नहीं देखा जाता, और मौखिक तथा लिखित भाषा के बीच की निरंतरता के संबंधों को नहीं समझा जाता और ज्यादातर उनकी उपेक्षा की जाती है। इसके विपरीत, पश्चिमी देशों में किय गया अध्ययन दिखाता है कि पारंपरिक पढ़ना और लिखना वास्तव में ऐसे अन्य विविध प्रकार के कौशलों, दृष्टिकोणों और मूल्यों के विकास पर निर्भर करता है जो साक्षर समाजों में जन्म से ही उपलब्ध संयोगों से उभरने लगते हैं (गुडमैन एवं गुडमैन, 1977, टील एवं सुलजबी, 1986)। मैरी क्ले ने "उभरती हुई साक्षरता" पद्धति प्रस्तावित की जिसकी विशेषता "साक्षर बनने की प्रक्रिया के दौरान" बच्चों का नजदीकी निरीक्षण करना है (टील एवं सुलजबी, पृ. 19)। उदाहरण के लिए, साझा रूप से किताबें पढ़ने में बच्चे सीखते हैं कि किताबें मजा लेने के लिए पढ़ी जा सकती हैं, कि छपी हुई भाषा में अर्थ होता है, कि छपी हुई भाषा की खास दिशा होती है, कि लिखने और चित्र बनाने को अभिव्यक्ति और संवाद के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है, कि पाठ्यसामग्री कई प्रकार की होती है, तथा और भी बहुत कुछ। जब बच्चे किताबों से रहित वातावरण से शिक्षा के औपचारिक परिवेशों में जाते हैं तो उन्हें इस बात का कोई ज्ञान नहीं होता, कोई समझ नहीं होती कि छपी हुई सामग्री कैसे काम करती है। ऐसी बातों, जो केवल लिपि की पारंपरिक निपुणता पर ही निर्भर नहीं करतीं, की समझ विकसित करने के अवसरों तक बच्चों की पहुँच बनाने का और भी बड़ा दायित्व इन परिवेशों पर होता है। परन्तु, यह गौर करना महत्वपूर्ण है कि लिखित सामग्री से रहित पृष्ठभूमियों से स्कूल आने वाले बच्चों के पास भी ऐसे कौशलों, ज्ञान, कथाओं, गीतों, संगीत और जबरदस्त जीवंतता की ऐसी संपदा होती है जो हो सकता है कि मध्यम-वर्गीय परिवारों के बच्चों के पास न हो। यदि इस संपदा को स्वीकारा और सराहा जाए तो वह पूरे स्कूल समुदाय को समृद्ध और जीवंत बना सकती है।

इस दृष्टि पत्र की जरूरत

2

ऊपर दिए गए शैक्षिक और राजनैतिक सन्दर्भ में ही प्रारंभिक साक्षरता पर केन्द्रित इस दृष्टि पत्र को तैयार किया गया है। पिछले कुछ समय में आए अन्य नीति दस्तावेजों में भी प्रारंभिक भाषा और शिक्षा के बारे में और गंभीरता से विचार करने की जरूरत को इंगित किया गया है। भारत सरकार द्वारा शुरू किए गए पढ़े भारत बढ़े भारत अभियान ने प्रारंभिक पढ़ने और गणित के लिए, खास तौर पर कक्षा 1 और 2 में, अपनी दृष्टि को स्पष्ट करते हुए एक सोच सामने रखी है। अपने पहले लक्ष्य को यह इस तरह व्यक्त करता है "बच्चों को प्रेरित, स्वतंत्र और लगावयुक्त ऐसे समझ के साथ पढ़ने वाले और लिखने वाले बना सकना जिनके पास पढ़ने और लिखने के टिकाऊ कौशल हों और जो अपनी कक्षा के हिसाब से सीखने के उपयुक्त स्तरों को हासिल कर सकें" (पृ. 1)। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) ने ऐसे लर्निंग इंडिकेटर्स (सीखने के सूचक) विकसित किए हैं जो कक्षावार सीखने के परिणामों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं, और इस तरह वे राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एनसीएफ), 2005 में व्यक्त विभिन्न स्तरों की अपेक्षाओं और एनसीएफ के अनुरूप विकसित किए गए पाठ्यक्रमों के पूरक लक्ष्यों का काम करते हैं। पर इनमें से कोई भी नीति दस्तावेज 3 से 6 वर्ष के पूर्व-स्कूल आयु वर्ग पर स्पष्ट रूप से विचार नहीं करता।

वर्तमान में देश में ऐसा कोई नीतिगत दस्तावेज नहीं है जो केवल प्रारंभिक साक्षरता से जुड़े मुद्दों पर ध्यान देता हो। इस ओर ध्यान आकर्षित करने के साथ यह दृष्टि पत्र पिछले दस्तावेजों में व्यक्त कुछ निश्चित दृष्टिकोणों के आधार पर आगे बढ़ता है, और साथ ही यह ऐसे मुद्दों पर भी नए दृष्टिकोणों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है जिन पर अतीत में चर्चा ही नहीं की गई। यह दृष्टि पत्र 3-6 वर्ष पूर्व-स्कूल आयुवर्ग वाले बच्चों को स्कूली शिक्षा के प्रारंभिक वर्षों (6 से 8 वर्ष) से सतत रूप से जुड़ा हुआ मानता है, और दोनों को क्रमबद्ध चरणों की तरह देखता है। इस



दृष्टि पत्र की कल्पना एक ऐसे दस्तावेज के रूप में की गई है, जो छोटे बच्चों के लिए भाषा और साक्षरता विकास के क्षेत्र में जानकारी पर आधारित कार्यविधियां विकसित करने में नीति निर्माताओं और शिक्षाविदों (वास्तविक शिक्षकों तथा अकादमिक विद्वानों) को समर्थ बनाएगा।

2.1 मौखिक भाषा और साक्षरता

आगे बढ़ने से पहले, इस दृष्टि पत्र में उपयोग किए गए कुछ खास शब्दों के उपयोग को स्पष्ट करना महत्वपूर्ण है। यह दृष्टि पत्र मौखिक भाषा और साक्षरता को एक दूसरे से जुड़े हुए ऐसे क्षेत्रों की तरह देखता है जो कक्षा के परिवेशों में और साक्षर लोगों के जीवन में, संवाद, अभिव्यक्ति, और ज्ञान के उत्पादन के लिए व्यापक रूप से इस्तेमाल किए जाते हैं। इस दृष्टि पत्र में हमने 'मौखिक भाषा' शब्द का उपयोग बोलचालध्वंसवाद हेतु बोलने, सुनने और गैर-शाब्दिक संकेतों को समझने के लिए किया है, और 'साक्षरता' शब्द का उपयोग स्वयं के सशक्तिकरण के लिए पढ़ने और लिखने की प्रक्रियाओं की बात करने के लिए किया है। परन्तु, हमारी मान्यता है कि सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना (एलएसआरडब्ल्यू) क्रमिक रूप से विकसित न होकर, एक साथ विकसित होते हैं, जिनमें सुनना और पढ़ना संवाद के ग्रहण करने वाले पहलू होते हैं और लिखना तथा बोलना उसकी अभिव्यक्ति के पहलू होते हैं। इन कौशलों को विकसित करने की प्रक्रिया में 'सोचने' की केन्द्रीय भूमिका होती है। मौखिक भाषा के विकास से साक्षरता के विकास का सुनिश्चित पूर्वानुमान लगाया जा सकता है, इनका संबंध ऐसा है कि हम बच्चों की मौखिक भाषाओं की चर्चा किए बगैर साक्षरता की चर्चा नहीं कर सकते (कोल, 2005)। इसलिए, यह दृष्टि पत्र "प्रारंभिक साक्षरता" की बात करते हुए भी, उसके पहले मौखिक भाषा के विकास को पूर्व शर्त मान कर चलता है।

भाषा और साक्षरता को सीखने के बीच समानताएं भी हैं और भेद भी। दोनों एक सामाजिक संदर्भ के भीतर, सार्थक बातचीत, अनुभवों और गतिविधियों के दौरान हासिल की जाती हैं, जिनमें बच्चे दूसरों से संवाद स्थापित करने की आकांक्षा से प्रेरित होते हैं, क्योंकि वे दूसरे लोगों को वास्तविक जीवन की जरूरतों व उद्देश्यों के लिए भाषा और साक्षरता का इस्तेमाल करते हुए देखते हैं। दोनों के सीखने में अंतर इस वजह से होता है कि लिखित भाषा सीधे-सीधे मौखिक भाषा का लिखित रूप भर नहीं होती। मानव जाति की विकास यात्रा में लिखने की पद्धतियों का विकास अपेक्षाकृत रूप से हाल ही में हुआ है, इतने बाद में कि लिखी भाषा को अपने आप सीखने के लिए हमारा दिमाग संभवतः उस ढंग से अभी निर्मित नहीं हो पाया है, जिस ढंग से हो सकता है कि हम मानव विकास की यात्रा में मौखिक भाषा सीखने में सक्षम हो गए हैं। दोनों में एक और खास अंतर बोलचाल की भाषा की संदर्भनिष्ठ प्रकृति की तुलना में लिखी जाने वाली भाषा की प्रकृति का संदर्भ-रहित होना है। इसलिए, साक्षरता को हासिल करने के उतने स्वस्फूर्त और प्रयासरहित होने की संभावना नहीं होती जैसा कि मौखिक भाषा को हासिल करना होता है। अधिकांश बच्चों को स्पष्ट रूप से पढ़ना और लिखना सिखाए जाने की जरूरत होती है, जबकि मौखिक भाषा को हासिल करने में स्पष्ट बाह्य शिक्षा की भूमिका छोटी ही होती है। यह एक प्रमुख कारण है कि यह दृष्टि पत्र साक्षरता पर केन्द्रित है जो मौखिक भाषा के आधार पर विकसित होती है।

2.2 श्रोता समूह

इस दृष्टि पत्र के लक्ष्य श्रोता नीति निर्माता, शिक्षक प्रशिक्षक तथा ऐसे अन्य समूह (सरकारी तथा गैर-सरकारी) हैं जो शिक्षकों, कक्षाओं और प्रारंभिक उम्र के बच्चों के साथ काम करते हैं। इसके केन्द्रीय दृष्टिकोण की प्रकृति कार्यविधि-आधारित न होकर अवधारणात्मक है। इसलिए हो सकता है कि यह प्रत्यक्ष रूप से शिक्षकों के द्वारा कक्षाओं में उपयोग किए जाने लायक न हो, लेकिन जिन लोगों की दिलचस्पी इस क्षेत्र में प्रचलित अवधारणात्मक दृष्टियों और रुझानों की बारीक समझ हासिल करने में और उसके बारे में पढ़ने में हो, उन्हें इस बात से हतोत्साहित नहीं होना चाहिए।

2.3 उद्देश्य

- 3 से 8 वर्ष की उम्र वाले बच्चों के लिए साक्षरता सीखने और सिखाने के भारतीय संदर्भों को समझना
- प्रारंभिक भाषा और साक्षरता विकास के केन्द्रीय लक्ष्यों और सिद्धांतों की साझा समझ और दृष्टिकोणों को निर्मित करना
- शिक्षण विधियों, पेशेवर विकास तथा समुदाय के जुड़ाव के लिए इसके निहितार्थों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करना
- नीति विकास और पैरवी के लिए इसके निहितार्थों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करना

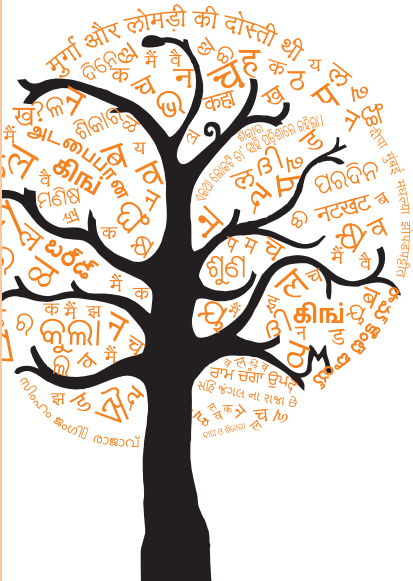
बच्चों के भाषा और साक्षरता सीखने को निर्धारित करने वाले संदर्भ

3

3.1. विकासात्मक संदर्भ

छोटे बच्चे गर्भ में ही मौखिक भाषा हासिल करना आरंभ कर देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मौखिक भाषा हासिल करने की प्रक्रिया जन्मजात क्षमताओं और वातावरण के योगदानों के बीच के जटिल क्रियात्मक संबंधों के परिणामस्वरूप घटती है। चोम्सकी (1986) ने सुझाया कि बच्चों में मौखिक भाषा हासिल करने की एक ऐसी नैसर्गिक क्षमता होती है (लैंग्वेज एक्वीजीशन डिवाइस – भाषा हासिल करने का उपकरण), जिसके कारण उन्हें बोलना सीखने के लिए किसी औपचारिक शिक्षा की जरूरत नहीं होती। वास्तव में, यह देखा गया कि व्याकरण की दृष्टि से बच्चों के अशुद्ध बोलों के बीच में माता-पिता के द्वारा किए गए हस्तक्षेप छोटे बच्चों का बोलना सुधारने में कारगर नहीं होते। चोम्सकी के तर्क का जोर इस बात पर है कि भाषा का विकास एक आन्तरिक तर्क प्रक्रिया और विकास के आन्तरिक उपायों के द्वारा शक्तिशाली ढंग से बाध्य किया जाता है। परन्तु, टोमासेलो (2003) भाषा की प्रकृति के बारे में चोम्सकी की स्थापना को खारिज करते हुए कहते हैं कि संज्ञानात्मक और सामाजिक कौशलों का पारस्परिक विकास ही भाषायी क्षमता का आधार होता है। उनकी धारणा है कि इन सामाजिक और संज्ञानात्मक कौशलों की मौजूदगी – न कि सिर्फ स्वायत्त भाषाई क्षमताओं की मौजूदगी – ही बच्चों को सामाजिक प्रयोजनों के लिए भाषा का इस्तेमाल करने में सक्षम बनाती है।

कृति द्वारा शक्तिशाली रूप से बाध्य किए जाने वाले विकास के क्षेत्रों में अक्सर विकास के ऐसे “निर्णायक दौर” होते हैं, कि यदि किसी विशेष दौर में उपयुक्त प्रोत्साहन उपलब्ध नहीं होता, तो वह विशेष कार्यक्षमता विकसित नहीं होती। भाषायी विकास में निर्णायक दौरों की मौजूदगी के प्रमाण के रूप में ऐसे जंगली बच्चों के उदाहरण दिए गए हैं (कर्टिस, 1977) जो प्रारंभिक वर्षों में मौखिक भाषा से पर्याप्त रूप से परिचित हुए बगैर ही बड़े होते हैं। इनमें से कई बच्चों को उनके प्रारंभिक वर्षों के बाद के सालों



में भाषाई विकास के लिए भरपूर सहयोग मिलने के बावजूद, वे मौखिक भाषा में सामान्य कुशलता हासिल करने में असफल रहे।

इस तर्क का एक हल्का रूप यह हो सकता है कि “निर्णायक दौरों” के बजाय विकास के “संवेदनशील दौर” – उम्र का एक ऐसा फैला हुआ दौर जब भाषा सबसे आसानी से सीखी जाएगी – होते हैं, ऐसे दौर के बाद भाषा सीखी तो जा सकती है, पर उसमें ज्यादा कठिनाई होगी और उसकी कार्यक्षमता भी कम होगी। भाषाई विकास के लिए निर्णायक दौर की धारणा के प्रवक्ता कहेंगे कि यह दौर 6 से 9 वर्ष की उम्र के बीच समाप्त हो जाता है (लैनेबर्ग, 1967), जबकि जो लोग संवेदनशील दौर/समयावधि का समर्थन करते हैं (लेमैंडेला, 1977), वे कहेंगे कि बच्चे, युवावस्था के पूर्व तरुणाई के दौर में, सबसे ज्यादा आसानी और कुशलता से पहली मौखिक भाषा हासिल करते हैं। मौटे तौर पर इसी दौर की बात दूसरी भाषा सीखने के सिद्धांत के प्रवक्ताओं के द्वारा भी की जाती है, जो कहते हैं कि बच्चे दूसरी भाषाओं को तब सबसे आसानी से सीखते हैं जब उनसे उनका परिचय यौवन की शुरुआत के पहले करवाया जाता है (जॉनसन एवे न्यूपोर्ट, 1989)।

इन मुद्दों पर कोई दृष्टिकोण अपनाने से पहले, इस चर्चा में कुछ बारीक भेदों को जोड़ना महत्वपूर्ण है। पहला, यह स्पष्ट है कि मौखिक भाषा का सीखना जहाँ एक ओर शरीर की नैसर्गिक क्षमता से निर्देशित होता है, वहीं दूसरी ओर उसे वातावरण से भी महत्वपूर्ण और भरपूर योगदान मिलता है। दो दिन के नवजात शिशुओं को भी, दूसरी भाषाओं की तुलना में, उनकी मातृभाषा के लयात्मक तत्वों के प्रति अधिक संवेदनशील देखा गया है, जो इशारा करता है कि उनकी मातृभाषा के प्रति यह संवेदनशीलता वे अपने गर्भ के वातावरण में ही हासिल कर लेते हैं (मेहलर इत्यादि, 1988)। इसी प्रकार, लगभग 8 माह से 1 वर्ष की उम्र तक, शिशु ऐसी घटनाओं के प्रति घटी हुई संवेदनशीलता दर्शाते हैं जो उनकी मौखिक भाषा के परिवेशों का हिस्सा नहीं होतीं (वेरकर एवं टीस, 1984)। इसके अलावा, मौखिक भाषाओं के परिवेशों की गुणवत्ता और उनके परिचय के लिए उपलब्ध अवसरों की सघनता में भी अंतर होते हैं, जिसके परिणामस्वरूप बच्चों की मौखिक भाषा सीखने की उपलब्धियों में भी फर्क होता है। विख्यात शिक्षाविद, जेरोम ब्रूनर (1983) ने सुझाया कि शरीर की नैसर्गिक प्रकृति द्वारा निर्धारित प्रत्येक भाषा हासिल करने के उपकरण (लैंग्वेज ऐक्वीजीशन डिवाइस –एलएड) को सामाजिक रूप से प्रदान किए जाने वाली उसकी भाषा हासिल करने की सहयोगी व्यवस्था (लैंग्वेज ऐक्वीजीशन सपोर्ट सिस्टम –एलएसएस) की जरूरत होती है। यह सहयोगी व्यवस्था भाषा हासिल करने की प्रक्रिया में अलग से जोड़ी जाने वाली सुविधा नहीं होती, बल्कि यह उसका अभिन्न अंग होती है। ब्रूनर का मत है कि बच्चे परिचित देखभाल करने वालों के साथ परिचित दिनचर्याओं के संदर्भ में भाषा सीखते हैं। सामाजिक अन्तर्क्रियाओं की अवधारणा की पैरवी करते हुए, कुहल (2007) ने प्रस्तावित किया कि भाषा हासिल करने के प्रारंभिक चरणों में घटित होने वाली भाषा की उस प्रसंस्करण प्रक्रिया में जो, किसी विशेष भाषा के प्रसंस्करण की प्रक्रिया की तुलना में, ज्यादा सार्वभौमिक है, एक सक्रिय सामाजिक अन्तर्क्रिया प्रक्रिया भी निहित होती है। पश्चिम में, वयस्कों तथा बच्चों के बीच होने वाली अन्तर्क्रियाओं ने दर्शाया है कि मध्यम-वर्गीय वयस्क सामान्य तौर पर वस्तुओं, घटनाओं तथा ऐसी अन्य चीजों की ओर बच्चों का ध्यान आकर्षित करते हैं, उनके बारे में उनसे पूछते हैं, बच्चे की सुविधा के लिए वस्तुओं और घटनाओं को लेबिल प्रदान करते हैं, और बच्चे के बोलों के बारे में उन्हें अपनी प्रतिक्रिया देते हैं (हॉफ, 2006, निनियो एवं ब्रूनर, 1978)।

क्या ऐसा ही उस तरह के गैर-मध्यवर्गीय, गैर-पश्चिमी संदर्भों में भी हो रहा है जिनमें तमाम भारतीय बच्चे रहते हैं? भारत में किया गया ऐसा कोई प्रकाशित प्रायोगिक शोधकार्य नहीं है जो इस प्रश्न का उत्तर देने में हमारी सहायता कर सके। हम बर्नस्टीन (1964) और अन्य लोगों (हटेनलोचर, इत्यादि, 1991) की विवादास्पद रचनाओं से जानते हैं कि पश्चिम में, मध्यम-वर्गीय बच्चों की तुलना में, निम्न सामाजिक-आर्थिक वर्गों के बच्चों से घर पर वयस्कों द्वारा बोलने के "सीमित संकेतों" का उपयोग करते हुए कम बोला जाता है। हीथ (1983) ने सुझाया है कि विभिन्न सामाजिक-आर्थिक और नस्लीय पृष्ठभूमियों के बच्चे घर पर अलग-अलग तरह से "शब्दों के साथ व्यवहार करने के ढंगज्ज, और बातचीत की भिन्न-भिन्न शैलियाँ सीखते हैं, और इस तरह, मध्यम-वर्गीय बच्चों की बातचीत स्कूल में भाषा का उपयोग करने की शैलियों के अनुरूप होती है। रोजोफ (1990) बच्चों के सीखने की प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए "प्रशिक्षार्थी" की उपमा का प्रयोग करते हैं। उनका मानना है कि सीखने की प्रक्रिया में बच्चे सक्रिय रहते हैं क्योंकि वे समाज के दूसरे सदस्यों का निरीक्षण करते हैं और उनके साथ भागीदारी करते हैं, समाज की सांस्कृतिक बारीकियों को सीखते हैं, और फिर सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेशों के साथ व्यवहार करने के अपने खुद के तरीके निर्मित करते हैं। भारतीय स्कूली कक्षाओं में बहुत से बच्चे स्कूल तथा पूर्व-स्कूल परिवेशों में न केवल विभिन्न भाषाओं और बोलियों के साथ, बल्कि विभिन्न प्रकार की बोलचालों या भाषा के उपयोग की शैलियों के साथ भी प्रवेश करते हैं, जिनमें से कई कक्षाओं में इस्तेमाल होने वाली भाषाओं और बातचीत की शैलियों से मेल नहीं खातीं। इसलिए, यह बेहद जरूरी है कि उन्हें भाषा और साक्षरता सीखने के लिए सबसे अनुकूल वातावरण प्रदान किया जाए – एक ऐसा वातावरण जो उन्हें सार्थक ढंग से अपनी समझ को निर्मित करने में सक्षम बनाए।

दूसरी भाषा सीखने से संबंधित निर्णायक दौर भी विवादों से परे नहीं हैं। मैरीनोवा टॉड, मार्शल, एवं स्नो (2000) ने दूसरी भाषा सीखने के निर्णायक दौरों की धारणा की, यह ध्यान दिलाते हुए, आलोचना की है कि सफलतापूर्वक दूसरी भाषा सीखने में अनेक कारकों का योगदान होता है, जिनमें से कई का उम्र से संबंध तो होता है पर वे उससे निर्धारित नहीं होते। उदाहरण के लिए, जिन परिवेशों में ज्यादा उम्र के सीखने वाले दूसरी भाषा सीखते हैं, उनसे कुशलता के जिन स्तरों की अपेक्षा की जाती है, और दूसरी भाषा हासिल करने की उनकी इच्छाशक्ति की तीव्रता, ये सभी दूसरी भाषा पर अधिकार करने में उनकी प्रत्यक्ष विफलता में योगदान देते हैं। इसके अलावा ज्यादा उम्र के सीखने वाले कुशलता की दृष्टि से एक समरूप समूह नहीं होते – उनकी आबादी के भीतर कई लोग ऐसे होते हैं जो उस दूसरी भाषा में उसके मूल बोलने वालों जैसी या उसके करीबी कुशलता हासिल कर लेते हैं, जो सुझाता है कि निर्णायक अवधि की अवधारणा, यदि कुछ हद तक लागू भी होती है, तो भी वह कोई ताकतवर बाधा नहीं होती। हमने इस मुद्दे की यहां विस्तार से चर्चा करने में इसलिए समय लगाया है, क्योंकि शुरूआती बचपन की कक्षा में भाषाओं के चुनाव के लिए इसके निहितार्थ हैं – ऐसे निहितार्थ जिन पर हम पाठ्यक्रम के खंड में वापिस आएंगे।

मौखिक भाषा से जुड़ा एक अंतिम मुद्दा भाषा और सोचने की प्रक्रिया का संबंध है। जहाँ कुछ सिद्धान्तकार/विचारक (उदाहरण के लिए पियाजे, 1959) अवधारणाओं और भाषा को संज्ञान के अलग-अलग क्षेत्रों की तरह देखते हैं, वहीं व्यागोट्स्की (1962) तथा अन्य सामाजिक-सांस्कृतिक सिद्धान्तकारों (उदाहरण के लिए, ब्रूनर, 1983) का मत है कि 3 साल की उम्र तक

विचार (अवधारणाएं) और भाषा परस्पर जुड़ी हुई व्यवस्थाएं बन जाती हैं। व्यागोट्स्की के अनुसार, हर शब्द एक अवधारणा होता है, अवधारणाएं विचार होती हैं, इसलिए सोचने को बोलने से बिलकुल अलग करना असंभव है। छोटे बच्चे अक्सर सवालों को हल करने के लिए जोर से बोलते हुए सोचते हैं, बाद में यह बोलना भीतर आत्मसात हो जाता है और "आंतरिक बोलना" बन जाता है। इसलिए बोलना सोचने में मध्यस्थ की भूमिका निभाता है (छोटे बच्चों में बाह्य रूप से, और बड़े बच्चों तथा वयस्कों में आंतरिक रूप से), और प्राथमिक रूप से उसकी प्रकृति सामाजिक होती है (चूंकि यह सामाजिक संकेतों का, जैसे कि शब्द, इस्तेमाल करता है)। इस अवधारणा में, बच्चों की बातचीत उनके सोचने का वाहन होती है। यह एक महत्वपूर्ण मुद्दा है जिस पर हम बाद के एक खंड में वापिस आएंगे।

अभी तक की चर्चा में हमने मौखिक भाषा के विकास के ऐसे विभिन्न पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित किया है जो प्रारंभिक भाषा तथा साक्षरता सीखने के लिए प्रासंगिक होते हैं। हमारी चर्चा यह दर्शाती है कि दूसरी भाषा को सीखने में जैविक (बायोलोजिकल या नैसर्गिक तथा सामाजिक परिस्थितियों से जुड़ी प्रक्रियाएं, दोनों का शक्तिशाली योगदान होता है। जहाँ एक ओर, सभी बच्चे विकास के संवेदनशील दौर में मामूली सहयोग दिए जाने पर ही मौखिक भाषा सीख लेते हैं (विन्यास, शब्दार्थ, स्वर-भेद, व्यावहारिक उपयोग), वहीं देखभाल करने वाले वयस्कों और बच्चों के बीच की शाब्दिक अंतर्क्रियाओं की प्रकृति, विभिन्न सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक संदर्भों में बहुत बदलती रहती है। अन्य समूहों की तुलना में, कुछ खास सामाजिक समूहों के मौखिक भाषा उपयोग करने के तरीके, स्कूल में भाषा के उपयोगों से बेहतर मेल खाते हैं। दूसरी भाषा सीखने के लिए निर्णायक दौरों के पक्ष में दिए जाने वाले प्रमाण विवादास्पद हैं। जो यह सुझाता है कि छोटे बच्चों को बहुत जल्दी दूसरी भाषा से परिचित करवाने के मुद्दे को और गहराई तथा बारीकी से समझे जाने की जरूरत है। अंत में, कुछ प्रभावशाली सिद्धांतवेत्ता सुझाते हैं कि सोचने के माध्यम के रूप में भाषा बहुत शक्तिशाली भूमिका निभाती है, और बातचीत वह प्रमुख साधन हो सकता है जिसके द्वारा छोटे बच्चे सोचते हैं।

इसके बाद हम प्रारंभिक साक्षरता सीखने के विकासात्मक पहलुओं पर विचार करते हैं। 1960 के दशक में, प्रभावशाली शिक्षाविदों (गुडमैन एंड गुडमैन, 1977) ने सुझाया कि पढ़ना और लिखना सीखना, बोलना सीखने के समानांतर प्रक्रियाएं होती हैं। यदि छोटे बच्चे साक्षरता संपन्न परिवेशों में डूबे रहते हैं, तो वे लिखित भाषा भी उसी तरह स्वाभाविक रूप से बिना प्रयास किए ग्रहण कर लेते हैं जैसे कि वे मौखिक भाषा सीखते हैं। आज, अनेक स्रोतों से प्राप्त होने वाले प्रमाण (कोनर, इत्यादि, 2004, रेडुजेल इत्यादि, 2005, रूपले इत्यादि, 2009) यह सुझाते हैं कि बच्चों को प्रवाह पूर्ण पढ़ने और लिखने वाला बनने के लिए खास परिमाण में स्पष्ट और व्यवस्थित ढांचों और सहयोग की आवश्यकता होती है, जो दिखाता है कि सफलतापूर्वक साक्षरता सीखने में प्रकृति की अपेक्षा पालन-पोषण ज्यादा निर्णायक भूमिका निभाता है। हमारा "साक्षरता" से जो आशय होता है, वह स्वयं सामाजिक रूप से निर्धारित और निर्मित होता है (स्ट्रीट, 1994), और एक संदर्भ से दूसरे संदर्भ में बदलता रहता है।

जैसा कि पहले ध्यान दिलाया गया है, पश्चिमी संदर्भों में मध्यवर्गीय बच्चे जन्म से ही साक्षर परिवेशों में डूबे रहते हैं। इन संस्कृतियों में सोते समय सुनाई जाने वाली कहानियों जैसी "साक्षरता घटनाएं"

शिशुओं और छोटे बच्चों की दिनचर्या का ऐसा सहज हिस्सा होती है, कि बच्चे कुछ खास तरीकों से साहित्य को समझने, उससे संबंध जोड़ने और उससे ग्रहण करने में सामाजिक रूप से प्रशिक्षित हो जाते हैं। ऐसी संस्कृतियों में, साक्षरता जन्म से ही “उभरने वाली” होती है, और उनमें छोटे बच्चों, यहाँ तक कि शिशुओं को भी, ऐसी किताबों को उठाते, पकड़ते देखा जा सकता है जो उनके लिए जोर से पढ़ी जाती हैं, वे उनके पन्ने पलटते हैं, चित्रों को बहुत गौर से देखते हैं, और लिखकर कुछ व्यक्त करने या संवाद करने के पूर्वप्रयासों के रूप में घिचपिच रूप में उनमें लिखते हैं (सुल्जबी एवं टील, 1988, टील एवं सुल्जबी, 1986)। पश्चिम में अध्येता/शोधकर्ता/विद्वान, बच्चों के किताबें पढ़ने के (सुल्जबी एवं टील, 1986), और लिखने के (क्ले, 1979) उभरते हुए प्रयासों में विकासात्मक प्रवृत्तियों को दिखाने में सफल हुए हैं।

जाहिर है कि, साक्षरता विकास के ऐसे परिदृश्य भारतीय संदर्भों में, यहाँ तक कि मध्यम-वर्गीय संदर्भों में भी, दुर्लभ हैं, जिनमें किताबें और किताबों को पढ़ना और उन्हें साझा करना परिचित सांस्कृतिक दिनचर्या नहीं होती। पर, हमारे देश के कई समाजों और परिवारों में कथाएं कहने की मौखिक परंपराएं बहुत सशक्त होती हैं। ये परंपराएं संभावित रूप से बच्चों को वर्णन करने और व्यक्त करने के मजबूत कौशलों को निर्मित करने में, और साथ ही साहित्य और भाषा के कलात्मक स्वरूपों के सौन्दर्य को सराहने और उसका आनन्द लेने में मदद करती हैं। परन्तु, वे फिर भी बच्चों का साक्षर संसारों से परिचय करवाने के लिए काफी नहीं होतीं, जब तक कि उनमें कोई लिखित या चित्रात्मक हिस्सा शामिल नहीं होता। भारत में बच्चे सामान्य तौर पर उस उभरती हुई साक्षरता वाले मार्ग से साक्षरता नहीं सीखते जिसका वर्णन पश्चिम के शोध साहित्य में किया गया है। बहुत से बच्चों का छपी हुई सामग्री और शब्दों से पहली बार सामना तब होता है जब वे उनकी स्कूल की पाठ्यपुस्तकों में उनके सामने प्रस्तुत होते हैं। साक्षरता की सामाजिक कार्यप्रणाली लिपि पर अधिकार करने और पाठों को रटकर सीखने की ओर व्यवस्थात्मक रूप से निर्देशित होती है – और यह पढ़ना तथा लिखना सीखने में एक सबसे बड़ी बाधा है।

परन्तु, यदि हम भारतीय संदर्भ में साक्षरता को इस तरह पुनः परिभाषित करें और इसकी संभावनाओं की फिर से कल्पना करें, कि उसके केन्द्र में साक्षर कार्यविधियों से अर्थपूर्ण और लगावयुक्त संबंध हों, तो साक्षरता सीखने का वर्तमान रास्ता, फिर हो सकता है कि, हमारे संदर्भों में भी, उपयुक्त न माना जाए। नए परिदृश्य में, हम चाहेंगे कि छोटे बच्चे यह देखने में समर्थ हो सकें कि छपी हुई सामग्री का मतलब होता है, कि उसका उपयोग संसार में संवाद के लिए, अभिव्यक्ति के लिए, और कुछ लक्ष्यों को पाने के लिए किया जा सकता है। हम चाहेंगे कि जब वे पढ़ना और लिखना सीखते हैं, तो वे इन बातों पर गौर करें कि पाठ्यसामग्री कई प्रकार की होती है, कि कहानी में भिन्न-भिन्न तत्व होते हैं, और लेखन की अलग-अलग शैलियां होती हैं। शुरुआती बचपन के शैक्षिक स्थानों पर आने वाले अनेक बच्चे, छपी हुई सामग्री से रहित घरेलू परिवेशों से आते हैं, और उनके पास लिखित शब्द से अर्थपूर्ण ढंग से संबंध बनाने के लिए यह सांस्कृतिक पूँजी नहीं होती। अधिक साक्षर समाजों की तुलना में, हमारे इस परिप्रेक्ष्य में, तार्किक रूप से, उनको पढ़ने और लिखने से परिचय के उभरते हुए अवसर प्रदान करने का दायित्व और भी बड़ा है। **हमारा यह मानना है कि छोटे बच्चों से पारंपरिक रूप से पढ़ने और लिखने वालों के रूप में विकसित होने की अपेक्षा करने से पहले उनको उभरते हुए पढ़ने वालों और लिखने वालों की तरह भाग लेने के लिए ज़्यादा लंबी अवधि (उदाहरण के लिए, 3 से 6 वर्ष) के अवसर प्रदान किए जाना चाहिए।**

3.2. सामाजिक और भाषाई संदर्भ

भारत का सामाजिक ढांचा बहुत जटिल है। विविध प्रकार की संस्कृतियों, जातियों, वर्गों और भाषाओं की मौजूदगी उसके सामाजिक ताने-बाने को बहुत समृद्ध बनाती है। पर यह सामाजिक व्यवस्था के भीतर तमाम तरह के अन्याय और पक्षपातों को भी अत्यधिक बढ़ा देती है। ये पक्षपात शिक्षा, रोजगार और आमदनी के अवसरों में जाति, नस्ल, भाषाओं, तथा अन्य समाजशास्त्रीय कारकों पर आधारित होते हैं (देसाई एवं कुलकर्णी, 2008)। इसको दर्शाते वाले, भारतीय समाज में हाशिए पर ठेल दिए गए लोगों के उदाहरणों में अनुसूचित जातियां, अनुसूचित जनजातियां, कुछ धार्मिक समुदाय, पलायन करके दूसरे स्थानों पर प्रवास करने वाले समुदाय, स्त्रियां, और साथ ही कुछ व्यवसायों में संलग्न लोग शामिल हैं। इनमें से कुछ समूहों को संवैधानिक तौर पर वंचित तबकों की तरह माना जाता है, पर अन्धों को नहीं माना जाता। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के अधिकांश लोग अभी भी आर्थिक शोषण से पीड़ित हैं, और ऐसे निम्न स्तर के व्यवसायों तक सीमित रखे जाते हैं, जो समाज में उनकी हाशिए की स्थिति को न सिर्फ बनाए रखते हैं, बल्कि और भी कठोर बनाते हैं। इन समूहों के जो सदस्य ग्रामीण संदर्भों में रहते हैं, वे प्रमुख रूप से भूमिहीन और विपन्न मजदूर होते हैं। आदिवासी समुदाय भी, उनके परिवेशों के अलग-थलग होने के कारण, और उनकी सांस्कृतिक तथा भाषाई भिन्नताओं के कारण ऐतिहासिक रूप से सबसे अधिक वंचित सामाजिक समूहों में से हैं (बेटेल, 1991)। बहुसंख्यक आदिवासी आज भी गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करते हैं, उनकी साक्षरता दरें अत्यंत कम हैं, वे कुपोषण, बीमारियों से ग्रस्त रहते हैं और उन पर विस्थापन तथा मानवाधिकारों के उल्लंघन का खतरा मंडराता रहता है। इन समूहों के भीतर लड़कियां अपने लिंग और समुदाय, दोनों कारणों से दोहरे स्तर पर वंचित होती हैं। लड़कियों को प्रभावित करने वाले अनेक कारक होते हैं, जैसे कि जाति-आधारित भेदभाव और दुर्व्यवहार, बाल विवाह, सांस्कृतिक रीतियां और रिवाज, और आने-जाने पर प्रतिबंध आदि।

कुछ विद्वानों ने ध्यान दिलाया है कि वंचित समूहों के सरोकारों को केवल शिक्षा पद्धति की दृष्टि से समझना या समाधान करना हमारे लिए हानिकारक और गलत होगा, जिसका जोखिम हम नहीं उठा सकते। उदाहरण के लिए, नंबीसन (2000), ने इस ओर ध्यान खींचा है कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2000) में व्यक्त किए गए पाठ्यक्रम और शैक्षणिक सरोकार सामाजिक वंचितीकरण, विशेष रूप से आदिवासियों और दलितों के वंचितीकरण, की ऐतिहासिक प्रवृत्ति को समझने में विफल रहे हैं। इन परिवारों के बच्चे ज्यादा करके पहली पीढ़ी के सीखने वाले होते हैं। और उन्हें अभी भी स्कूलों में अलगाव और अभाव का सामना करना पड़ता है। इन बच्चों के स्कूलों में सफल हो पाने की काबिलियत के लिए भी इसके निहतार्थ होते हैं। पारिवारिक पृष्ठभूमि के अंतर उसी समय प्रासंगिक हो जाते हैं, जैसे ही बच्चों का स्कूलों में मूल्यांकन किया जाता है, जो प्रमुख रूप से लिखित सामग्री से परिचय पर आधारित परीक्षाओं या भाषाई साक्षरता बोध की परीक्षाओं द्वारा किया जाता है (वैल्स, 1986)।

वंचित समुदायों के बच्चों को अक्सर उनके अपेक्षाकृत ऊँची जातियों के शिक्षकों के द्वारा व्यापक भेदभाव का सामना करना पड़ता है (बालगोपालन एवं सुब्रमनियन, 2003)। शोध से प्राप्त आंकड़े (केयर, 2014) दर्शाते हैं कि दलित तथा अन्य पिछड़ी जातियों और समुदायों के बच्चे बड़ी संख्या में

सरकारी स्कूलों में पढ़ते हैं। बच्चों की इस आबादी को ज्यादा करके सामान्य वर्ग के शिक्षकों द्वारा पढ़ाया जाता है। शिक्षकों के इन विद्यार्थियों के प्रति रवैए – जैसे कि उनसे सफलता की बहुत कम अपेक्षा करना – के कारण यह अक्सर उनके सीखने में अड़चन बन जाता है। बच्चे ऐसे शैक्षिक परिवेशों में स्वयं को कोई उपलब्धि हासिल करने के लिए अयोग्य मानना सीखते हैं।

भारत में प्रचलित भाषाओं और बोलियों (डायलेक्ट्स – उपभाषों) की संख्या भी बहुत ज्यादा है। 2001 की जनगणना के अनुसार, भारत में 122 भाषाएं तथा 234 मातृभाषाएं हैं, और यह इनकी संख्या को बहुत कम आंकने वाला अनुमान है, यह देखते हुए कि इस गिनती में केवल वे भाषाएं शामिल की गई हैं जिनके बोलने वालों की संख्या 10,000 से ज्यादा है (वानिशी, 2011)। इनमें से केवल 22 ही वे अनुसूचित भाषाएं हैं जो राज्यों की राजभाषाओं की तरह काम करती हैं। स्कूलों में 41 भाषाएं पढ़ाई जाती हैं, और 33 भाषाएं प्राथमिक स्तरों पर शिक्षा के माध्यम की तरह उपयोग की जाती हैं (मल्लिकार्जुन, 2004)। भारतीय भाषाएं, मोटे तौर पर, पाँच भाषा परिवारों का प्रतिनिधित्व करती हैं (इंडो-आर्यन, द्रविडियन, ऐशियाई, तिब्बती-बर्मी तथा सैमिटो-हेमिटिक), और वे 14 लिपियों में लिखी जाती हैं। कई भाषाओं (उदाहरण के लिए, कन्नड़, कोडागु तथा कोंकण) की साझा लिपि होती है (मल्लिकार्जुन, 2004)। अंग्रेजी के द्वारा उपयोग की जाने वाली अल्फाबेटिक लिपि के विपरीत, भारतीय भाषाओं द्वारा उपयोग की जाने वाली कई लिपियों की प्रकृति अल्फा-सिलेबिक होती है। इन लिपियों को हासिल करने की प्रक्रियाओं के संबंध में बहुत ही कम शोध किया गया है।

भारत में एक त्रिभाषा शासकीय नीति लागू है, जो निर्देश देती है कि सभी बच्चों को क्षेत्रीय भाषा में शिक्षा मिल मिलनी चाहिए, तथा गैर-हिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी तथा अंग्रेजी की शिक्षा दी जानी चाहिए, और हिन्दी बोलने वाले राज्यों में हिन्दी, अंग्रेजी और एक आधुनिक भारतीय भाषा (जो यथासंभव दक्षिण की हो) की शिक्षा दी जानी चाहिए (शिक्षा की राष्ट्रीय नीति, 1968)। जटिल सामाजिक-राजनीतिक तथा भाषाई कारकों के कारण, यह नीति जमीनी स्तर पर बुरी तरह नाकाम रही है। मेनन, विश्वनाथ एवं साही (2013) ने ध्यान दिलाया है कि भारत में भाषाओं से जुड़े ऊंच-नीच के क्रम वाले कई पहलू हैं, जैसे कि भारतीय भाषाओं के सापेक्ष अंग्रेजी का प्रभुत्व होना, हिन्दी का अन्य क्षेत्रीय भाषाओं पर प्रभुत्व, किसी क्षेत्र की अल्पसंख्यक भाषाओं के ऊपर उस क्षेत्र की आधिकारिक क्षेत्रीय भाषा का प्रभुत्व होना, और किसी भाषा के मानक लिखित रूप का उस भाषा से जुड़ी बोलियों के रूपों पर प्रभुत्व होना।

भारत के ऐसे जटिल भाषाई संदर्भ में ही, अधिकांश छोटी उम्र के सीखने वाले पूर्व-प्राथमिक तथा प्राथमिक स्कूली शिक्षा में प्रवेश करते हैं। भारतीय भाषाओं के शिक्षण के बारे में प्रकाशित दृष्टि पत्र (2006) ध्यान दिलाता है कि इस देश में बहुत से बच्चे बहुभाषाई योग्यताओं को लेकर स्कूल

¹ Dalit: part of the Scheduled Caste, the term includes all historically discriminated communities of India out-caste and Untouchables and are listed as the Scheduled Castes in the Constitution of India.

में पहुँचते हैं परन्तु वे उन योग्यताओं के इस्तेमाल से वंचित कर दिए जाते हैं क्योंकि स्कूल की भाषा का उन बच्चों के घरों और समुदायों की भाषा से संबंध नहीं जुड़ता। किसी अल्पसंख्यक भाषाई, या बोली की पृष्ठभूमि से आने वाले बच्चों को खास तौर पर नुकसान उठाना पड़ता है क्योंकि उनकी घरेलू भाषा या बोली पर स्कूल के परिवेश में कोई विचार ही नहीं किया जाता, जो संज्ञानात्मक सरोकारों के अलावा, ऐसे बच्चों के स्वाभिमान को भी प्रभावित करता है (अग्निहोत्री, 2007)। भारतीय भाषाओं के शिक्षण का दृष्टि पत्र कहता है कि यह बेहद जरूरी है कि हम बच्चों को उनकी मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करें, और साथ ही उन बच्चों की बहुभाषाई योग्यताओं को कक्षा के कामकाज में बाधा मानने के बजाय, उन्हें संसाधन की तरह उपयोग करने के लिए हम शिक्षकों को तैयार करें।

इन अनुशांसाओं के बावजूद, जमीनी स्तर पर अंग्रेजी के लिए जबरदस्त आकांक्षा है, क्योंकि उसे सामाजिक और आर्थिक उन्नति के साधन के रूप में देखा जाता है। ऐसी आकांक्षाओं को पूरी तरह से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता, खास तौर पर जब उन्हें दलित विद्वानों द्वारा व्यक्त की गई इस चिन्ता से जोड़ कर देखा जाए कि मातृभाषा को बनाए रखने की जिम्मेदारी का बोझ दमित तबकों पर नहीं डाला जाना चाहिए, जबकि संभ्रान्त वर्ग के द्वारा अंग्रेजी के आधार पर सुलभ होने वाली विशेष सुविधाओं का लाभ लिया जाना जारी है (प्रसाद, 2010)। हम भारत में भाषाई स्थिति की जटिलता का समाधान केवल उन विकासात्मक/संज्ञानात्मक लाभों पर ध्यान देकर जो मातृभाषा में शिक्षा के द्वारा उपलब्ध होते हैं, या दूसरी ओर, केवल उस सामाजिक-आर्थिक उन्नति पर ध्यान देकर जो अंग्रेजी के द्वारा उपलब्ध होती है – नहीं कर सकते हैं। एक विवेकपूर्ण समाधान विकसित करने के लिए दोनों को क्रमिक ढंग से जोड़ कर देखे जाने की जरूरत है। हम एक लचीली बहुभाषाई नीति की अनुशांसा करते हैं, जिसका (न्यूनतम) लक्ष्य प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूली शिक्षा के द्वारा संतुलित द्विभाषी क्षमता और द्विभाषी साक्षरता हासिल करना हो।

पूर्व-प्राथमिक स्तर पर, हम अनुशांसा करते हैं कि छोटे बच्चों को प्राथमिक शिक्षा उनकी मातृभाषा में मिले, परन्तु उनका परिचय विभिन्न प्रकार की बोली जाने वाली भाषाओं, जैसे कि उस क्षेत्र की अन्य बोलियों, क्षेत्रीय भाषा तथा अंग्रेजी, से भी करवाया जा सकता है। यह परिचय, विभिन्न भाषाओं में शिक्षकों के द्वारा जोर से पढ़ी जाने वाली कहानियों, और अन्य पाठ्य-सामग्री के माध्यम से, साथियों, शिक्षकों, माता-पिताओं, और अतिथियों के साथ अनौपचारिक तथा औपचारिक बातचीत तथा चर्चाओं के माध्यम से, गीतों, नाटकों और विविध प्रकार की श्रव्य-दृश्य (आडियो-विजुअल) सामग्री के माध्यम से करवाया जा सकता है। हालांकि इस मुद्दे से संबंधित शोध को खोज पाना कठिन है, फिर भी जमीनी स्तर पर प्राप्त की गई समझ के आधार पर, और अधिक व्यापक सैद्धांतिक समझ के आधार पर, हम अनुशांसा करते हैं कि छोटे बच्चों को प्रारंभिक वर्षों के दौरान केवल एक लिपि से परिचित करवाया जाए। यदि बच्चों की मातृभाषा की कोई लिपि न हो, तो क्षेत्रीय भाषा की लिपि का उपयोग किया जा सकता है। पूर्व-प्राथमिक स्तर पर, बच्चों का लिपि से परिचय उन्हें अर्थपूर्ण गतिविधियों – जैसे कि साझा रूप से कहानी की किताबों को पढ़ना, साझा रूप से लिखना, बनाए गए हिज्जों (स्पैलिंग) का इस्तेमाल करना, चित्र बनाना, लेखन और नाटक खेलना, आदि –

में पूरी तरह तल्लीन करवाने के द्वारा किया जाना चाहिए। प्राथमिक स्कूली शिक्षा के शुरुआती वर्षों के दौरान लिपि के बिलकुल सही होने, उसके प्रवाह और निपुणता पर जोर देना आरंभ किया जा सकता है, जबकि पूर्व-प्राथमिक वर्षों, और प्राथमिक स्कूल की शुरुआत में हमारा लक्ष्य भाषा और साक्षरता सीखने को अर्थपूर्ण, प्रासंगिक और संवादमय गतिविधियों की तरह स्थापित करना होना चाहिए। हालांकि, अंग्रेजी और अन्य भाषाएं मौखिक रूप से शैक्षिक परिवेश में शुरुआत से मौजूद हो सकती हैं, परन्तु अतिरिक्त भाषाओं से जुड़ी लिपियों से परिचय धीरे-धीरे क्रमिक रूप से ही करवाया जाना चाहिए, और वह तब जब पहली भाषा में बुनियादी योग्यता स्थापित की जा चुकी हो। हम शुरुआती बचपन के वर्षों में शिक्षा के प्राथमिक माध्यम के रूप में मातृभाषा को छोड़कर दूसरी भाषाओं को अपनाने की अनुशंसा नहीं करते।

अनुशंसाओं को करने के कई कारण हैं। जैसा कि इस खंड में पहले ध्यान दिलाया गया है, शुरुआती बचपन के भारतीय शैक्षिक परिवेशों में अनेक बच्चे जाति, समुदाय, लिंग और भाषाओं की प्रतिकूल पृष्ठभूमियों के साथ प्रवेश करते हैं। उनमें से बहुत से पहली पीढ़ी के स्कूल में पढ़ने वाले होते हैं, जिनके लिए उनके घरों की मौखिक संस्कृति से स्कूल की छपे हुए शब्दों की संस्कृति में – जहाँ उनके घरों में उपलब्ध “ज्ञान की पूँजियों” (मॉल इत्यादि, 1992) पर विचार ही नहीं किया जाता – स्थानांतरण करना एक जबरदस्त चुनौती हो सकती है। वंचित तबकों के बच्चे अक्सर अपने ‘संसारों’ को उस तरह से ‘शब्दों’ से नहीं जोड़ पाते जिस तरह उनके मध्यवर्गीय साथी कर पाते हैं (हीथ, 1996)। वे शैक्षिक परिवेशों में छपाई की उन अवधारणाओं या ‘छपाई के उस बोध’ के साथ नहीं आते जो उनके सुविधासंपन्न सहपाठी अपने शुरुआती बचपन के वर्षों के दौरान घर पर रोजमर्रा के क्रियाकलापों के द्वारा तथा उनके सामाजिक संसारों से ग्रहण कर चुके होते हैं (कौल, भारगढ़ एवं शर्मा, 2013)। कक्षा में मातृभाषा का उपयोग करना, या क्षेत्रीय बोली के उपयोग की अनुमति देना, विविध प्रकार की पृष्ठभूमियों के बच्चों को, कक्षा में असफलता के एहसास के बजाय, क्षमता के साथ काम करने की सुविधा देता है। यदि वे भाषा तथा साक्षरता हासिल करने को अपने जीवन से जोड़ने में समर्थ होंगे तो उनके द्वारा उसे एक सार्थक और प्रासंगिक प्रक्रिया की तरह देखने की तब अधिक संभावना होगी। 3 से 6 साल के आयुवर्ग के लिए शुद्धता की अपेक्षा संवाद, संप्रेषण और अभिव्यक्ति पर, अधिक जोर देने के द्वारा, हम नन्हें सीखने वालों को कौशल तथा अभ्यास (स्किल-एंड-ड्रिल) जैसी प्रक्रियाओं पर आधारित गतिविधियों से हटकर अर्थ निर्माण करने वाली गतिविधियों में संलग्न होने का अवसर देते हैं। पर साथ ही, शुद्धता को नजरअंदाज नहीं किया जाता और समय के साथ धीरे-धीरे उसे पाठ्यक्रम में अधिक महत्व प्राप्त हो जाता है। लिपि ऐसे अमूर्त चिन्हों के समूहों से बनी होती है, जिनमें छोटे सीखने वालों को धीरे-धीरे निपुणता हासिल करने की जरूरत होती है। एकबारगी, जब एक लिपि में निपुणता हासिल हो चुकी हो, तो लिपियां कैसे काम करती हैं, इसकी उनकी समझ (उदाहरण के लिए, यह समझ कि लिखे हुए अमूर्त चिन्हों में मतलब होता है) से जुड़े उनके परा-भाषाई (मेटा-लिंग्विस्टिक) कौशलों को धीरे-धीरे नई लिपि के सीखने के लिए उपयोग किया जा सकता है। अंत में, एक व्यावहारिक स्तर पर, शुरुआती बचपन में छोटे सीखने वालों को एक साथ कई प्रकार की लिपियां सिखाने वाले शुरुआती बचपन के शिक्षाविदों को सक्षम बनाने का बोझ भी इससे हल्का होगा।

3.3 पाठ्यक्रम संबंधी संदर्भ

भारतीय शैक्षिक परिवेशों में पारंपरिक रूप से शिक्षा उच्च वर्ग के दायरे तक ही सिमटी रही है, जिसके चलते आबादी का एक बहुत छोटा हिस्सा ही औपचारिक स्कूली शिक्षा तक पहुँच हासिल कर सका है, या साक्षर बन सका है (राव इत्यादि, 2003, चौधरी, 2009)। आज भी, भिन्न-भिन्न सामाजिक तथा आर्थिक स्तरों के परिवारों के बच्चों की शैक्षिक अवसरों तक पहुँच और उन्हें उपलब्ध स्कूलों के प्रकारों में पूरे देश में व्याप्त असमानताएं दस्तावेजों में स्पष्ट रूप से दर्ज हैं (नम्बीसन, 1996, 2010)। इसलिए, भाषा तथा साक्षरता शिक्षा के जो सभी पारंपरिक “प्रतिरूप” भारतीय संदर्भों में प्रचलित थे, ऐतिहासिक रूप से उनका उपयोग पूरी आबादी के बहुत छोटे हिस्से के साथ किया गया। इसके अलावा, पढ़ने और लिखने की विभिन्न पद्धतियों और दर्शनों के गुणों तथा दोषों के बारे में विद्वतापूर्ण बहसों का यहाँ बहुत हद तक अभाव रहा है।

अंग्रेजी शिक्षा तक मध्यम वर्गीय परिवारों की पहुँच के बारे में व्यापक दस्तावेजी जानकारी उपलब्ध है (रामनाथन, 2007)। अंग्रेजी की माँग का अंदाज, भारत के दूरदराज के इलाकों में भी, बहुत छोटे बच्चों के लिए “अंग्रेजी माध्यम” के पूर्व-स्कूलों की वृद्धि से लगाया जा सकता है। अक्सर, इन पूर्व-स्कूलों में प्रचलित पाठ्यक्रम तथा कार्यविधियाँ बच्चों की विकासात्मक जरूरतों के प्रतिकूल होती हैं। शिक्षकों को दूसरी भाषा की शिक्षण पद्धति के बारे में कोई प्रशिक्षण नहीं मिला होता, इसके अलावा उनमें से अनेक स्वयं अंग्रेजी भाषा में कुशल नहीं होते, जो कि उसे सिखाने वाले शिक्षक के लिए पहली आवश्यकता होती है। अधिकांश मामलों में, शिक्षा के माध्यम के रूप में भी, अंग्रेजी से बच्चों का पहला परिचय, बोली हुई भाषा के बजाय, अंग्रेजी की वर्णमाला (अल्फाबेट) तथा लिपि के रूप में होता है। पाठ्यसामग्री की भाषा से अपरिचित होने के परिणामस्वरूप, हो सकता है कि बच्चे अक्षरों और शब्दों को तो पहचानना सीख जाएं, परंतु शब्दावली हासिल करना और भाषा को समझना उनके लिए चुनौतीभरा होता है। हमारे स्कूलों में पहली, दूसरी और तीसरी भाषाओं के लिए विभेदपूर्ण अलग-अलग शिक्षण पद्धतियाँ नहीं होतीं, और वे सभी एक ही तरीके का इस्तेमाल करते हुए पढ़ाई जाती हैं।

अंग्रेजी के विपरीत, अनेक भारतीय लिपियों में चिन्ह और ध्वनि के बीच में परस्पर एक नियमित संबंध होता है। बर्न्टसैन (2003) ने ध्यान दिलाया है कि पढ़ना और लिखना सिखाने की पारंपरिक विधियों ने इस संबंध को आधार बनाकर इन क्षमताओं को निर्मित किया है। भारतीय भाषाओं की लिपियाँ आमतौर पर वर्णमाला की विधि द्वारा सिखाई जाती हैं – जिसमें वर्णमाला के पारंपरिक क्रम के अनुसार मूलाक्षरों को एक के बाद एक क्रमबद्ध ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। प्रत्येक मूलाक्षर का संबंध उससे आरंभ होने वाले एक शब्द से जोड़ा जाता है (बर्न्टसैन, 2003)। एकबारगी, जब सभी मूलाक्षरों का परिचय करवाया जा चुका होता है, तब बच्चों को द्वितीयक स्वर चिन्हों (मात्राओं) के साथ उनके संयोजनों से परिचित करवाया जाता है – जिसे बाराखड़ी कहते हैं। प्रत्येक अक्षर को उसके सभी संभव स्वर संयोजनों के साथ प्रस्तुत किया जाता है (उदाहरण के लिए, क, का, कि, की, आदि)। इसके बाद, संयुक्ताक्षरों की ध्वनियों पर, फिर शब्दों, वाक्यों, और अनुच्छेदों पर क्रमिक ढंग से ध्यान दिया जाता है (बर्न्टसैन, 2003)। इस प्रस्तुतीकरण के दौरान उपयोग की जाने वाली शिक्षण पद्धति बोल कर सामूहिक रूप से दोहराने पर, और लिखे हुए चिन्हों की नकल करने

पर जोर देती है, जब तक कि चिन्हों को मौखिक तथा लिखित, दोनों तरह से हासिल नहीं कर लिया जाता।

इसी विधि को ही, उसकी समीक्षा किए बगैर, अंग्रेजी सिखाने के लिए भी उपयोग किया गया है, हालांकि अंग्रेजी में यह जरूरी नहीं है कि सभी चिन्हों और ध्वनियों के बीच में सीधा-सीधा संबंध हो, और यहाँ तक कि अंग्रेजी के अक्षरों के नाम भी उन ध्वनियों से भिन्न होते हैं जो उनसे निकलती हैं। अंग्रेजी सिखाने के लिए आम तौर पर "अल्फाबेट विधि" का उपयोग किया जाता है, जिसमें अल्फाबेट (अंग्रेजी वर्णमाला) के अक्षरों का क्रमबद्ध ढंग से परिचय करवाया जाता है, और उनका संबंध उन्हीं अक्षरों से आरंभ होने वाले शब्दों से जोड़ा जाता है (उदाहरण के लिए, a एपल के लिए होता है)। किसी अक्षर से जुड़ी भिन्न-भिन्न आवाजों पर शायद ही कभी कोई जोर दिया जाता है (उदाहरण के लिए 'a' cat, cake तथा car में अलग-अलग ध्वनियां देता है)।

सेन ने (आगामी कार्य में) एक त्रिभाषाई वातावरण में, शुरुआती वर्षों में साक्षरता सिखाने की ऐसी प्रक्रियाओं की जाँच-पड़ताल की है, जहाँ पूर्व-किंडरगार्टन और कक्षा 1 के 4 से 6 साल के बच्चों को औपचारिक रूप से एक साथ अंग्रेजी, हिन्दी और उर्दू सिखाई गई। स्कूल में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी था। उनको प्राप्त हुई जानकारी ने दर्शाया कि पढ़ने और लिखने की गतिविधियां दोनों कक्षाओं में और तीनों भाषाओं में स्पष्ट रूप से एक ही ढंग से संचालित की गईं। शिक्षकों के द्वारा सीखने को, जिसमें पढ़ना भी शामिल था, एक नकल करने और दोहराने के द्वारा याद कर लेने की प्रक्रिया की तरह देखा गया, और बच्चों को, याद रखने में बहुत अच्छी तरह समर्थ, सीखने वालों की तरह देखा गया।

इस चर्चा में तीन बातों पर गौर किया जाना चाहिए। पहली है कि, सभी सामाजिक-आर्थिक स्तरों पर, यह मान्यता रही है कि बच्चों को अर्थ निर्मित करना सीखने से पहले लिपि पर अधिकार करने की जरूरत होती है। भाषा और साक्षरता सीखने के इस क्रमिक प्रतिरूप के फलस्वरूप पढ़ाने की ऐसी विधियां व्यापक रूप से प्रचलित हो गई हैं जो भाषा और साक्षरता सीखने को छोटे बच्चों के लिए, एक बहुत अर्थपूर्ण गतिविधि के बजाय, महज एक यांत्रिक प्रक्रिया बना देती हैं (मेनन, 2014, मेनन अभी प्रकाशित होने की प्रक्रिया में)। मान लिया जाता है कि जब बच्चे ने एकबारगी लिपि को हासिल कर लिया हो और वह अनुच्छेदों को पढ़ने में सक्षम हो जाए, तो समझना या अर्थ निर्मित करना स्वाभाविक रूप से घटित हो जाएगा, इसलिए, ज्यादा उम्र के बच्चों के लिए भी भाषा कक्षाओं में अर्थ निर्मित करने पर विरले ही कभी जोर दिया जाता है (सिन्हा, 2012)। दूसरी है कि, मौखिक भाषा को प्रारंभिक साक्षरता के सीखने से जुड़ी होने के रूप में नहीं देखा गया है। लिपि को हासिल करने को उन मौखिक भाषा(ओं) से बहुत हद तक असंबंधित माना जाता है, जिनको लेकर बच्चे कक्षा में प्रवेश करते हैं, इसलिए पूर्व भाषाई ज्ञान/कौशलों/अनुभवों को न तो अवधारणात्मक रूप दिया जाता है और न ही उनका कक्षा में संसाधन की तरह उपयोग किया गया है। तीसरी है कि, मध्यम और उच्च आय वर्गों की पहुँच वाली नर्सरी तथा किंडरगार्टन सुविधाओं के सिवाय, पहली कक्षा से नीचे के बच्चों को भाषा या साक्षरता सिखाने पर पारंपरिक रूप से ज्यादा ध्यान केंद्रित नहीं किया गया है। किंडरगार्टन में भी भाषा और साक्षरता सिखाने की प्रक्रिया उसी शैली में आगे बढ़ती है, जो अक्षरों के क्रमिक परिचय, अक्षरों का शब्दों से संबंध, समवेत रूप से दोहराने

और नकल करके लिखने पर आधारित होती है। तुकान्त नर्सरी कविताएं (राइम्स), और साथ ही शब्दावली समूह (जैसे कि रंग, शरीर के अंग, आदि) भी किंडरगार्टन भाषा पाठ्यक्रम का आम हिस्सा होते हैं।

प्रारंभिक भाषा तथा साक्षरता सिखाने की अधिक समकालीन पद्धतियां अब अक्षरों के समूहों के एक साथ प्रस्तुतीकरण की ओर बढ़ गई हैं, जिनमें शुरुआत से ही इन अक्षरों से छोटे-छोटे शब्द बनाने का प्रयास किया जाता है। इसके पीछे इरादा, लगभग स्कूल आरंभ करते ही बच्चों को शब्द के स्तर तक पहुँचने में सक्षम बनाना होता है। परंतु, इन अधिक प्रगतिशील पद्धतियों में भी पहले बताई गई भारत के शैक्षिक परिवेशों की तीनों समस्याएं मौजूद रहती हैं – अर्थात्, बच्चे की मौखिक भाषा की उपेक्षा, समझने की उपेक्षा, और बहुत छोटे (3 से 5 साल की उम्र वाले) बच्चों के भाषा तथा साक्षरता सीखने की उपेक्षा। इन अधिक प्रगतिशील, सुधारवादी कक्षाओं में भी बच्चे अपना अधिकांश समय लिपि को नकल करके उतारने, और अक्षरों को जोड़कर शब्दों, वाक्यों और अंत में अनुच्छेद निर्मित करने में व्यतीत करते हैं (मेनन, अभी प्रकाशित होने की प्रक्रिया में)।

भाषा और साक्षरता शिक्षा के लक्ष्य

4

भाषा और साक्षरता शिक्षा के लक्ष्य समग्र शिक्षा के लक्ष्यों से घनिष्ठ रूप से जुड़े होना चाहिए। मनुष्य के जीवन में शिक्षा के स्वाभाविक, मुक्तिदायी और उपयोगी मूल्य होते हैं। इन सभी मूल्यों में समान विचार यही है कि शिक्षा मनुष्यों को एक ऐसा साधन देती है जिसके माध्यम से वे भिन्न-भिन्न तरीकों से अपने जीवन में उन्नति करें। लोकतांत्रिक समाज मनुष्य की उन्नति को कुछ परस्पर संबंधित मूल्यों (जैसे न्याय, स्वतंत्रता, समानता, दूसरों के कल्याण की चिन्ता – एनसीएफ, 2005), क्षमताओं (जैसे स्वतंत्र रूप से तर्क करने की क्षमता और सीखने की प्रक्रिया को सीखना), के विकास और आर्थिक तथा नागरिक भागीदारी की तैयारी से जोड़ते हैं।

शिक्षा के इन विस्तृत लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए हम यह प्रस्तावित कर सकते हैं कि पढ़ना-लिखना सीखने के कौशल का विकास भाषा और साक्षरता शिक्षा का एक जरूरी लक्ष्य तो है पर यह उसका अपने आप में पर्याप्त लक्ष्य नहीं है। भाषा और साक्षरता शिक्षा का एक अधिक केन्द्रीय लक्ष्य विद्यार्थियों को इस काबिल बनाना होना चाहिए कि वे भाषा व साक्षरता के कौशलों और अभ्यासों का उपयोग समाज में सार्थक व सशक्त ढंग से भागीदारी करने में कर सकें। भारत जैसे सामाजिक रूप से अत्यधिक स्तरों में बँटे हुए समाज में इसका अर्थ होगा हमारे कई विद्यार्थियों के लिए भाषा और साक्षरता को इस्तेमाल करने के सांस्कृतिक रूप से सशक्त तरीकों तक पहुँच बनाना। हमारी आदर्श सोच ऐसे समर्थ नागरिक तैयार करने की होना चाहिए जो भाषा और साक्षरता का उपयोग गरिमायुक्त जीवन जीने के लिए कर सकें, और जो इन क्षमताओं का उपयोग अपने जीवन को सार्थक रूप देने में और अपने समाजों व समुदायों का जीवन सार्थक बनाने में कर सकें (ल्यूक, 2000)।

भाषा और साक्षरता शिक्षा के लक्ष्यों की अवधारणा को सर्वांगीण ढंग से विकसित करने की जरूरत है। इस व्यापक लक्ष्य को हासिल करने में सहयोग देने वाले लक्ष्य इस प्रकार हैं :



- a. **साक्षर लोगों के संसार में दाखिल होने की प्रासंगिकता बनाना:** वर्तमान में, भारत में बहुत से बच्चे पहली पीढ़ी के सीखने वाले होते हैं, या अति वंचित और हाशिए पर रहने वाले समुदायों से आने वाले विद्यार्थी होते हैं। इसलिए, साक्षर लोगों की दुनिया में दाखिल होने की उनके लिए प्रासंगिकता बनाना बहुत आवश्यक है। लक्ष्य यह होना चाहिए कि बच्चे पढ़ने और लिखने को ऐसी सार्थक और परस्पर संबंधी गतिविधियों के रूप में देखें जो स्कूल के भीतर और स्कूल के बाहर की उनकी जिंदगियों के लिए प्रासंगिक हों।
- b. **साक्षर लोगों की दुनिया के साथ जुड़ाव के एहसास को पैदा करना:** यहाँ “जुड़ाव” शब्द का उपयोग भाषा और साक्षरता शिक्षा के लिए एक स्वाभाविक प्रेरणा को दिखाने के लिए किया जा रहा है। जुड़ाव की अवधारणा का विद्यार्थियों के जीवन में इस शिक्षा की प्रासंगिकता से नजदीकी संबंध है, चूंकि विद्यार्थियों के ऐसी गतिविधियों के साथ जुड़े रहने और जुड़ाव को बनाए रखने की ज्यादा संभावना होती है जिन्हें वे अपने जीवन में प्रासंगिक मानते हैं। यह वर्तमान में उपयोग किये जाने वाले शब्द “आनन्दपूर्ण” सीखने से भिन्न है, क्योंकि आनन्द हमेशा सीखने की पूर्व-शर्त नहीं हो सकता, जबकि जुड़ाव प्रायः सीखने की पूर्व-शर्त होता है।
- c. **बहुभाषी क्षमताएं विकसित करना: भारत एक बहुभाषाई देश है।** यदि हमारी कल्पना अपने समाज के बहुभाषाई चरित्र को बनाए रखना और उसे समृद्ध बनाना है तो बच्चों की बहुभाषीय क्षमताओं को विकसित करने के पर्याप्त मौके प्रदान करना भाषा तथा साक्षरता शिक्षा का एक प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए। कम से कम, संतुलित द्विभाषिता तो हमारे देश में भाषा और साक्षरता शिक्षा का एक लक्ष्य होना ही चाहिए।
- d. **मौखिक और लिखित स्वरूपों में भाषा को समझने की क्षमता विकसित करना:** सभी बच्चे (3 साल के बच्चे भी) अंतर्व्यक्तिक मौखिक स्तर पर मातृभाषा को समझने की क्षमता के साथ शिक्षा के स्थानों पर आते हैं। लेकिन शिक्षा के इन स्थानों पर बच्चों को भाषा के इस्तेमाल से जुड़ी अलग-अलग स्तर की पेचीदगियों और चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। पहले तो ऐसे स्थानों पर बच्चों का अपनी मातृभाषा से इतर दूसरी भाषाओं और बोलियों से परिचय हो सकता है। दूसरे, यहाँ वे अपनी प्रथम भाषा को इस्तेमाल करने के अधिक औपचारिक तरीके भी जान सकते हैं। तीसरे, थोड़े से बड़े बच्चों (6-8 साल के) का परिचय लिखित भाषा से होगा, और उनसे सरल कहानियों से लेकर अधिक जटिल जानकारी वाले पाठों तक विभिन्न प्रकार की लिखित पाठ्य सामग्री से अर्थ निकालने के लिए कहा जाएगा। समझना (या अर्थ निर्मित करना) भाषा व साक्षरता शिक्षा का केन्द्रीय लक्ष्य है, और इन सभी संदर्भों में उसे बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- e. **भाषा की सुंदरता के साथ जुड़ाव का भाव विकसित करना:** समझ को अक्सर अर्थ या जानकारी निकालना माना जाता है। जहाँ यह एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है, वहीं इतना ही महत्वपूर्ण लक्ष्य होगा बच्चों को भाषा के सौंदर्य के प्रति मौखिक और लिखित रूपों में प्रतिक्रिया करने में समर्थ बनाना। बच्चों का छोटी उम्र में ही कविता, साहित्य और कला के

रूप में भाषा के अन्य स्वरूपों से परिचय कराया जाना चाहिए ताकि उनमें इन्हें सराहने की क्षमताएं विकसित हो सकें।

- f. **लिपियों को प्रवाह के साथ समझना सीखना:** बच्चों का विभिन्न लिपियों के साथ धीरे-धीरे उम्र के मुताबिक परिचय कराना चाहिए। हमारा एक प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए कि बच्चे 8 वर्ष की आयु तक सरल पाठों को सही-सही समझने और सही स्पेलिंग (वर्तनी या हिज्जे) लिखना सीख सकें। इस व्यापक लक्ष्य के भीतर ही कई विशिष्ट लक्ष्य, जैसे बोली गई भाषा की ध्वनियों में सही-सही भेद कर पाने की योग्यता, अक्षरों और अक्षर-ध्वनि के संबंधों को पहचानने की योग्यता, पृथक ध्वनियों को जोड़कर शब्दों को बनाने की योग्यता, शब्दों को अलग-अलग ध्वनियों में विभाजित करने की योग्यता, और ऐसी ही अन्य योग्यताओं को विकसित करने जैसे लक्ष्य निहित हैं।
- g. **विभिन्न तरह के उद्देश्यों के लिए प्रभावी ढंग से भाषा और साक्षरता का उपयोग करना सीखना:** बच्चों को बहुत छोटी उम्र से यह बात सिखाई जाना चाहिए कि शैक्षिक परिवेशों में जो बातें उन्हें सिखाई जाती हैं वे बातें उनकी जिंदगी में बहुत काम आएंगी। स्कूल के भीतर के सीखने तथा स्कूल के बाहर की उनकी जिंदगियों के बीच के इस संबंध को दर्शाने के पहलू को विकासात्मक दृष्टि से उपयुक्त तरीकों के द्वारा पाठ्यक्रम में मजबूती से निर्मित किए जाने की जरूरत है।
- h. **साक्षर लोगों के संसार के साथ समीक्षात्मक ढंग से जुड़ना:** यदि शिक्षा का केन्द्रीय उद्देश्य लोगों को समर्थ जीवन जीने के काबिल बनाना है तो उन्हें शिक्षा के स्थानों में विचारों और पाठों के साथ समीक्षात्मक ढंग से जुड़ना सिखाए जाने की जरूरत है। इसे बिलकुल छोटी उम्र से सिखाना शुरू किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, छोटे बच्चों को उनके लिए हुए अनुभवों को उनके विकास की दृष्टि से संवेदनशील ढंग से बताने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।

प्रारंभिक भाषा और साक्षरता विकास के नितांत आवश्यक पहलू 5

जहाँ भाषा और साक्षरता के व्यापक उद्देश्य ऐसे स्वतंत्र तथा प्रेरित पढ़ने वाले बनाना है जो हमारे समाज में सार्थक और सशक्त ढंग से भागीदारी करने में समर्थ हों, वहीं ऐसे कई तत्वों की पहचान भी की गई है जो इस प्रक्रिया में केन्द्रीय भूमिका निभाते हैं। इन प्रमुख तत्वों में से कई की पहचान, अमेरिका में वहाँ के राष्ट्रीय पठन दल (नैशनल रीडिंग पैनल या एनआरपी, 2000) के द्वारा— (अर्थात, फोनीमिक (भाषा की विशिष्ट ध्वनियों का) बोध, फोनिक्स (ध्वनियों तथा अक्षरों का परस्पर संबंध), प्रवाह, शब्द भंडार और समझना) — तथा राष्ट्रीय प्रारंभिक साक्षरता दल (नैशनल अर्ली लिटरेसी पैनल, 2008) के द्वारा की गई थी — (अर्थात, वर्णमाला का ज्ञान, ध्वनि संरचनाओं का बोध, त्वरित स्वतः नाम देना, लिखना या नाम लिखना और ध्वनि संरचनाओं को याद रखना)। जहाँ ये तत्व भाषा तथा साक्षरता विकास के लिए नितांत आवश्यक हैं, वहीं एनआरपी की आलोचना, विशेष रूप से शोध के प्रमाणों के चुनाव की कार्यप्रणाली के कारण, भी की गई (कोल, 2003)। जो प्रमुख तत्व इनमें शामिल नहीं किए गए, वे पढ़ने की प्रेरणा होना और बच्चों की पढ़ने में रुचि होना थे। कक्षा में होने वाले शिक्षण से जुड़ने में बच्चों की मदद करने में, और विद्यार्थियों को यह भरोसा, कि वे पढ़ने वाले बन सकते हैं, दिलाने में आंतरिक प्रेरणा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है (गैम्बरेल, 1996)। गैम्बरेल के अनुसार, यह तर्क दिया जाता है कि “आंतरिक प्रेरणा व्यक्ति की किसी काम में सफलता या असफलता के पूर्वानुमान के द्वारा, तथा उस काम के प्रति व्यक्ति के आपेक्षिक आकर्षण को वह कितना मूल्य देता है, इसके द्वारा सशक्त रूप से प्रभावित होती है” (1996, पृ. 518)। जो साक्षरता कार्यक्रम आंतरिक प्रेरणा के आधार पर निर्मित होता है, वह उन्हें अंतर्निहित रूप से प्रेरित होने में भी मदद करता है (गथरी, इत्यादि, 2009)। जैसा कि इस दृष्टि पत्र में पहले उल्लेख किया गया है, भाषा तथा साक्षरता कौशलों को, क्रमिक रूप से नहीं, बल्कि एक साथ सिखाया जाने की जरूरत होती है। निम्नलिखित खंड, विभिन्न स्रोतों के द्वारा चिन्हित इन्हीं (कौशलों के) पहलुओं



का वर्णन करता है, जो भाषा और साक्षरता विकास के लिए बेहद महत्वपूर्ण हैं और जिन पर एक साथ काम किए जाने की जरूरत होती है।

5.1. मौखिक भाषा और शब्दावली

5.1.1. मौखिक भाषा : बच्चों के प्रारंभिक वर्षों में मौखिक भाषा का विकास बाद के वर्षों के दौरान साक्षरता के विकास में बुनियादी भूमिका निभाता है (कॉल, 2005), खासतौर से पहली भाषा में (ब्रॉम्ली, 2000; क्ले, 1991; पैलेग्रिनी और गैल्डा, 2000)। मौखिक भाषा के विकास में अन्य कौशल भी शामिल रहते हैं जो साक्षरता के विकास में अपनी भूमिका निभाते हैं, जैसे फोनोलॉजिकल (ध्वनि संरचनाओं का) बोध, फोनिक्स (ध्वनियों तथा अक्षरों का परस्पर संबंध), शब्दावली, समझना इत्यादि (स्कारबॉरो, 2009)। मौखिक भाषा पर जोर देना, खासतौर पर स्थानीय देशज भाषा पर जोर देना उन विद्यार्थियों के लिए और भी जरूरी है जो कक्षा की प्रमुख भाषा नहीं बोलते। मौखिक भाषा बच्चों की अपनी जिंदगियों, सपनों आदि से साक्षरता को जोड़ने में मदद कर सकती है (नोरोन्हा, व्यक्तिगत संवाद, 18 जनवरी, 2016)।

5.1.2. शब्दावली: पाठ की प्रभावी समझ के विकास के लिए, और बाद के वर्षों के साक्षरता कौशलों का पूर्वांशुमान लगाने के लिए शब्दों का ज्ञान एक महत्वपूर्ण व परिवर्तनशील योग्यता है। शुरुआती बचपन के शिक्षा कार्यक्रमों में, मौखिक भाषा और शब्दावली, दोनों के विकास को गुणवत्ता सूचकांकों के रूप में देखा जाना चाहिए। डिकिन्सन और साथियों द्वारा किए गए शोध (2003) ने प्रमाण दिए हैं कि मौखिक भाषा के कौशल, खासतौर से शब्दावली का विकास ध्वनि विज्ञान की समझ पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, और बाद में समझ के साथ पढ़ने के कौशल के विकास की संभावना भी बताते हैं। एश्टन-वार्नर (1963) ने पढ़ने लिखने की 'जैविक' गतिविधियों की पद्धति विकसित की जिसमें उन्होंने बच्चों को वे शब्द पढ़ाना शुरू किए जिन्हें वे सीखना चाहते थे, और उन्होंने इस 'महत्वपूर्ण शब्दावली' का इस्तेमाल बच्चों को पढ़ने लिखने से परिचय कराने के लिए किया। इन योजनाओं में एक तरीका यह हो सकता है कि शिक्षक बच्चों के द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले शब्दों को अलग-अलग श्रेणियों के हिसाब से लिख ले और धीरे-धीरे इन अवधारणाओं के आधार पर आगे बढ़े (नोरोन्हा, व्यक्तिगत संवाद, 18 जनवरी, 2016)।

5.2. छपी हुई सामग्री के साथ जुड़ाव

5.2.1. छपी हुई सामग्री का बोध: कोई किताब कैसे काम करती है यह अंतर्बुद्धि की बात नहीं है और किताबों को उठाने-रखने की भी कुछ परंपराएं होती हैं। मारी क्ले (1979) ने इन परंपराओं की पहचान "छपी हुई सामग्री से जुड़ी अवधारणाओं" के रूप में की जो पढ़ने की प्रक्रिया की पूर्ववर्ती हैं। इनमें से कुछ परंपराओं में किसी किताब की छपाई की दिशा का ज्ञान (बायें से दायें, ऊपर से नीचे, आगे से पीछे, एक लाइन पूरी पढ़कर अगली लाइन की शुरुआत पर आना), तस्वीरों और छपे हुए अक्षरों में अंतर, विराम चिन्हों की व्यवस्था का उपयोग, और किसी अक्षर और किसी शब्द की विशेषताएं शामिल रहती हैं। क्ले के अनुसार ये परंपराएं छपे हुए शब्दों से बच्चों का परिचय करवा कर उन्हें पढ़ना सीखने की प्रक्रिया में मदद करती हैं। इसी प्रकार की परंपराएं उन भाषाओं में भी

अपनाई जाएंगी जहाँ लिपि अलग ढंग से लिखी जाती है, उदाहरण के लिए उर्दू और अरबी, जिनमें छपाई को दायीं से बायीं तरफ पढ़ा जाता है।

5.2.2. बच्चों के साहित्य के साथ जुड़ना: बच्चों को अच्छा साहित्य जोर से पढ़कर सुनाने से उनमें रुचि पैदा होती है और वे अपने से किताबें उठाकर पढ़ने के लिए प्रेरित होते हैं। प्रेरणा विद्यार्थियों के जीवन का एक ऐसा महत्वपूर्ण अंश है जो उन्हें यह विश्वास दिलाता है कि वे पढ़ने वाले बन सकते हैं (गैम्ब्रैल, 1996)। बच्चों को नियमित रूप से कहानियां पढ़कर सुनाने से उन्हें साक्षरता सीखने में मदद मिलती है (बस, वान लीजेनडूर्न और पैलेग्रिनी, 1995)। शिक्षकों को ऐसी विस्तृत और स्तरों के अनुरूप अच्छी तरह से संरचित पाठ्यसामग्री चाहिए जो विद्यार्थियों के पाठों से जुड़ी हों। शुरुआती पढ़ने वालों के लिए उनके स्तर के ऐसे उपयुक्त पाठ होना बेहद जरूरी है जिनमें मनमोहक चित्र हों।

बच्चों का साहित्य से जुड़ पाना उनमें पढ़ने की रुचि पैदा करने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इसलिए, यह अनिवार्य है कि बच्चों के लिए चुना गया साहित्य सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक हो (फॉक्स और शॉर्ट, 2003; हैरिस, 1992), ताकि बच्चे उससे खुद को जोड़ सकें (नोडलमैन, 1992)। भारत में, कई संगठनों और प्रकाशकों ने बच्चों के लिए आनंददायी और आकर्षक किताबें प्रकाशित की हैं। इनमें से कुछ प्रमुख हैं: राष्ट्रीय बाल साहित्य संस्थान (एनसीसीएल) की किताबें, एकलव्य की किताबें, एनसीईआरटी की बरखा श्रृंखला की किताबें। ये किताबें देश की देश की सांस्कृतिक और भाषाई विविधता को प्रतिबिंबित करती हैं, और कभी-कभी ऐसी सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों को भी प्रतिबिंबित करती हैं जिनका सामना शायद बच्चे रोज करते हों और जो कक्षा के भीतर चर्चा की गुंजाइश बनाती हैं, या जिनपर चर्चा की जानी जरूरी है।

5.3 ध्वनियां, चिन्ह और शब्द

5.3.1. फोनीमिक अवेयरनेस (ध्वनि इकाइयों का बोध): फोनीमिक अवेयरनेस (पीए), बच्चों की यह समझने की क्षमता होती है कि बोलना दरअसल अलग-अलग ध्वनियों की श्रृंखला से बनता है और ये ध्वनियां, फोनिक्स और हिज्जों (स्पेलिंग) के लिए एक आधार प्रदान करती हैं (आर्मब्रस्टर, लैहर, और ऑस्बॉर्न, 2001)। ऐसा समझा जाता है कि बोले गए प्रत्येक शब्द को ध्वनियों की इकाइयों की तरह माना जा सकता है जिन्हें किसी वर्णमाला के अक्षरों के द्वारा निरूपित किया जाता है (स्नो, बर्न्स, और ग्रिफिन, 1998)। इसके अतिरिक्त, पीए कौशल सिर्फ किसी शब्द की ध्वनि में आने वाले अक्षरों पर ही नहीं बल्कि उस पूरे शब्द के अर्थ पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित करने में बच्चों की मदद करते हैं (ग्रिफिथ और ऑल्सन, 1992)। इस बात को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि देवनागरी लिपि का इस्तेमाल करने वाली कई भारतीय भाषाएं हैं जिनकी प्रकृति अल्फा-सिलेबिक है, यानी, उसके अक्षर उस भाषा के सिलेबल (ध्वनि समूहों) और फोनीम (ध्वनि इकाइयों), दोनों को निरूपित करते हैं। यहाँ पढ़ने की प्रक्रिया में ध्वनियों की समझ की भूमिका उतनी स्पष्ट नहीं है। लेकिन, चूंकि लिपि चिन्हों (ऑर्थोग्राफी) से ध्वनियों को निरूपित करने के लिए ध्वनियों और ध्वनि-समूहों का बोध जरूरी है, इसलिए इसके परिणामस्वरूप ध्वनि इकाइयों की समझ भी बढ़ जाती है (नैग, 2007; नाग और स्नोलिंग, 2012)।

5.3.2. फोनिक्स (ध्वनियों और अक्षरों के पारस्परिक संबंध): अक्षरों तथा ध्वनियों के परस्पर संबंधों (फोनिक्स) की शिक्षा का प्रयोग लिखित भाषा के अक्षरों और बोली जाने वाली भाषा की ध्वनियों के बीच के संबंधों को सीखने में बच्चों की मदद करने के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए, बच्चों को यह पढ़ाया जा सकता है कि अंग्रेजी का अक्षर 'b', [b], ध्वनि को निरूपित करता है। यह खासतौर पर अंग्रेजी जैसी भाषाओं के लिए उपयोगी होता है क्योंकि अंग्रेजी रोमन लिपि में लिखी जाती है जो वर्णमाला पर आधारित है। इस बात पर गौर करना जरूरी है कि बच्चे जब फोनीम-ग्राफीन (ध्वनि/अक्षर) के संबंध को समझ चुकें तभी उन्हें फोनिक्स की शिक्षा दी जाना चाहिए, क्योंकि जब तक बच्चों को ध्वनि संरचनाओं के कौशल हासिल नहीं हो जाते तब तक वे फोनिक्स की शिक्षा को नहीं समझ सकते (स्नो इत्यादि, 1998)। यहाँ फिर भारतीय भाषाओं के लिए, हमें यह गौर करने की जरूरत है कि उनकी अल्फा-सिलेबिक प्रकृति के कारण, उनमें लिपि तथा ध्वनियों के बीच का परस्पर संबंध बहुत करके एकसा रहता है (नाग, 2007)।

5.3.3. अक्षर ज्ञान: वर्णमाला या अक्षर ज्ञान, अक्षरों के स्वरूप, नामों और उनसे संबंधित आवाजों के बारे में बच्चे की समझ की तरफ इशारा करता है। वर्णमाला के ज्ञान से बच्चों में बाद में दिखने वाली पढ़ने और सही हिज्जे करने की योग्यताओं का पूर्वानुमान लगता है (शखैश्नाइडर एवं अन्य, 2004) जो विद्यार्थी अक्षरों के नामों और ध्वनियों से परिचित नहीं होते, उन्हें पढ़ना सीखने में दिक्कत आती है और उन्हें संभावित रूप से पढ़ने की अक्षमताओं वाले विद्यार्थियों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। अक्षरों का ज्ञान ध्वनि संरचनाओं के बोध के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि अक्षर का ज्ञान बच्चों को बोले गए शब्दों की ध्वनि इकाइयों (फोनीम्स) को पहचानने और उनके साथ काम करने में मदद करता है। भारतीय भाषाओं में, अक्षर ज्ञान की भूमिका जटिल है। उदाहरण के लिए, कन्नड़ की लेखन प्रणाली में 400 स्पष्ट चिन्ह होते हैं जो ध्वनियों को निरूपित करते हैं (नाग 2007) और अधिकांश भारतीय लिपियों में 200-500 संकेत हैं (नाग व अन्य, 2011)। इसलिए इस भाषा के विद्यार्थियों से उच्च-स्तरीय संज्ञानात्मक ज्ञान की अपेक्षा रहती है। कक्षा 4 के विद्यार्थियों के एक सर्वेक्षण ने यह दर्शाया कि कक्षा 4 में पहुँचने तक विद्यार्थियों की 80% संकेतों पर अच्छी पकड़ बन चुकी थी (नाग, 2007)। इससे यह संकेत मिलता है कि कक्षा में पढ़ाने के लिहाज से भारतीय भाषाओं की संरचनाओं पर ध्यान से विचार करने की जरूरत है। जयराम (2008) ने वर्ण समूह पद्धति को प्रस्तुत किया है जो जैविक ढंग से उभरी है और यह अक्षरों, शब्दों और पाठों का विद्यार्थियों से एक साथ परिचय करवाने में शिक्षकों की मदद करती है। इसमें, एक स्तरों वाली रूपरेखा के अंतर्गत पहले व्यंजनों और स्वरों (वर्णों) से, फिर स्वर ध्वनियों का भेद बताने वाले द्वितीयक चिन्हों (मात्राओं) से इस प्रकार क्रमिक ढंग से हिन्दी वर्णमाला का बच्चों से धीरे-धीरे परिचय करवाया जाता है।

5.3.4. शब्दों को पहचानना : शब्दों को पहचानना पढ़ने वाले की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह लिखे हुए शब्दों को सही ढंग से और लगभग बिना प्रयास के पहचान लेता है, और इससे बच्चों को किसी पाठ को पढ़ते समय ही उसके अर्थ पर ध्यान केन्द्रित करने में मदद मिलती है (वैन्डरवैल्डन और साइजेल, 1997)। इस प्रक्रिया के अपने आप होने से बच्चों को पढ़ते समय उन शब्दों को पहचानने में भी मदद मिलती है जो वे पढ़ रहे होते हैं, और लिखते समय उनके सही हिज्जे

कैसे करना है, इसमें भी मदद मिलती है (लाबर्ज और सैमुअल्स, 1974)। कई भारतीय भाषाओं में, अधिकांश रूप से स्वर अपने प्राथमिक स्वरूप में शब्दों की शुरुआत में आते हैं और शब्दों के बीच में या अंत में आने वाले व्यंजनों के साथ अक्सर उन्हें उनमें लगी हुई मात्राओं के द्वारा निरूपित किया जाता है – इससे उस शब्द को दृश्यात्मक रूप से मन में समझने की प्रक्रिया और जटिल हो जाती है (सरकार और नाग, 2011)। इसका निहितार्थ यह है कि वे बच्चे जो किसी एक भारतीय लिपि में सीख रहे होते हैं उन्हें शब्दों को पहचानने के लिए शिक्षण के एक व्यवस्थित स्वरूप की जरूरत होती है। जहाँ भारतीय संदर्भ में किया गया अधिक शोधकार्य उपलब्ध नहीं है, वर्ण समूह पद्धति (जयराम, 2008) का एक उदाहरण की तरह उल्लेख किया जा सकता है। वर्ण समूह पद्धति में, बच्चों के कुछ अक्षरों (आम अक्षरों तथा स्वर ध्वनियों के संयोजन) से परिचित हो जाने के बाद, उनको ऐसे शब्दों से परिचित करवाया जाता है जो या तो तुक मिलाने वाले (रायमिंग) शब्द होते हैं, या जिन्हें शब्दों से जुड़ी गतिविधियों के माध्यम से एक विषयसूत्र (थीम) से संबंधित शब्द दीवार, सूचियों आदि के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। फिर उन्हें शब्दों की ध्वनि-तालों के साथ ताली बजाते हुए समूहों में इकट्ठा समझने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। फिर अक्षरों को जोड़कर शब्दों को निर्मित करने की प्रक्रिया से परिचित करवाने के लिए अक्षरों के चार्ट का उपयोग किया जाता है।

5.4 समझना और अभिव्यक्ति

5.4.1. समझना: समझना, अवधारणात्मक रूप से, पढ़ना सीखने की प्रक्रिया का एक घटक है। यदि विद्यार्थी शब्दों को तो पढ़ सकें पर उनका अर्थ न समझ सकें तो दरअसल वे सिर्फ लिपि चिन्हों को पहचान रहे होते हैं न कि पढ़ रहे होते हैं। समझना "लिखित भाषा के साथ काम करने और जुड़ने के द्वारा एक साथ अर्थ निकालने व अर्थ गढ़ने की प्रक्रिया है" (आरएएनडी, रीडिंग स्टडी ग्रुप, 2001, पृ. 12)। समझना एक ऐसी प्रक्रिया होती है जिसमें विद्यार्थी उनके द्वारा पढ़े जा रहे पाठ की मानसिक तस्वीरें गढ़ लेते हैं ताकि पाठ में क्या कहा जा रहा है इसका अर्थ समझने में उन्हें मदद मिल सके (वान डेन ब्रोक, और क्रैमर, 2000)। सुनी हुई बातों को समझना उन शब्दों/वाक्यों का अर्थ समझने की बच्चे की योग्यता होती है जिन्हें वह सुनता है/सुनती है और उनसे किसी तरह से अपने को जोड़ पाता है/पाती है। सुनी हुई बातों को समझने से विद्यार्थियों को अवधारणाओं को समझने, उन्हें याद करने, उनकी चर्चा करने और अपने शब्दों में उन्हें व्यक्त करने में मदद मिलती है। इससे बच्चे संवाद करने में निपुण हो जाते हैं। ल्यूक और फ्रीबॉडी (1999) ने ऐसे कम से कम "चार संसाधनों" या भूमिकाओं का जिक्र किया है जो पाठों के विषय में पाठक अपना सकते हैं। ये भूमिकाएं कोड-ब्रेकर (संकेतों को लिखने व समझने की योग्यता), अर्थ निर्मित करने वाले (शब्दार्थ की योग्यता), पाठ का इस्तेमाल करने वाले (व्यावहारिक योग्यता) और पाठ की समीक्षा करने वाले (समीक्षात्मक योग्यता) हैं।

5.4.2. प्रवाह: रासिंज्की के अनुसार, प्रवाह पाठ्यवस्तु को पकड़ने (लिपि चिन्हों को पहचानने के द्वारा) और साथ ही उसे समझ के साथ पढ़ने (गहरा अर्थ), की पाठक की योग्यता है, यानी पढ़ते हुए पाठ के अर्थ पर ध्यान केन्द्रित करने की योग्यता। प्रवाह के तीन अंगों की पहचान की गई है, जो हैं शब्दों को पहचानने की सटीकता, अपने-आप उनसे तालमेल बैठाते हुए उन्हें ग्रहण करना तथा ध्वनियों के उतार चढ़ाव (प्रोसोडी)।

5.4.3. लेखन: सिल्विया ऐश्टन वार्नर के कार्य (1963) पर, और मराठी में ध्वनियों और अक्षरों के बीच परस्पर संबंध की नियमितता पर, आधारित करते हुए भाषा और साक्षरता की एक शिक्षण पद्धति को विकसित करते हुए, मैक्सिन बर्नटसन बच्चों के अनुभवों को लिखने की, और फिर बच्चों को उसे पढ़ने में मदद करने की विधि के प्रभाव की ओर इशारा करती हैं। इसी तरह, वर्ण समूह पद्धति का उपयोग करते हुए जयराम (2008) बच्चों को चित्रात्मक ढंग से उनके शब्दों को निरूपित करने के लिए प्रोत्साहित करने की बात करते हैं। अर्थ का यह सांकेतिक निरूपण बच्चों को पढ़ने और लिखने की प्रक्रिया में मदद करता है।

क्ले (1979) के अनुसार, बच्चों को चित्र बनाने तथा घसीटा लेखन के द्वारा खुद को अभिव्यक्त करने देने से उन्हें साक्षरता के अपने तरीके विकसित करके सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय ढंग से शामिल होने में मदद मिलती है। यह दृष्टिकोण साक्षरता सीखने के उस दृष्टिकोण के विपरीत है जो मानता है कि साक्षरता सीखना तभी प्रारंभ होता है जब शिक्षण का एक सख्त औपचारिक तरीका इस्तेमाल किया जाता है, और बच्चा उन्हीं चरणों में लिखित शब्द के बारे में सीखता है जब उन्हें वह पढ़ाया जाता है (विलौमे और विल्सन, 1989, साइप, 2001)। क्ले बताते हैं कि जब बच्चों को खुद से लिखने के लिए छोड़ दिया जाता है तो वे विरले ही नकल करते हैं, बल्कि वे अपने खुद के हिज्जे बनाने लगते हैं। अपने बनाए गए हिज्जे बच्चे को ध्वनियों और अक्षरों के बीच के रिश्तों को समझने में मदद करते हैं (साइप, 2001, गीके, कैम्बॉर्न और फिट्जसिमंस, 1999)। पढ़ने की प्रक्रिया तब ज्यादा सार्थक होती है अगर बच्चा अपने लिखे हुए को पढ़ता है (नोम चोम्स्की, 1979)।

बच्चों के स्कूल आने के पहले ही वे अपने परिवेश में लेखन का उपयोग देख चुके होते हैं। जब बच्चों को उनकी रोजमर्रा की जिंदगियों के संदर्भ में लिखने के मौके दिए जाते हैं तो वे महत्वपूर्ण साक्षरता कौशलों, जैसे कि छपाई की अवधारणाएं, छपाई के काम और शब्दों की ध्वनि संरचनाओं का बोध, को सीखने में समर्थ होते हैं। इसी तरह, बर्नस, ग्रिफिन और स्नो (स्टार्टिंग आउट राइट, 1999, पृ. 102) बच्चों द्वारा बनाए गए उनके अपने हिज्जों को एक मददगार उपकरण मानते हैं।

माता-पिता और शिक्षकों के लिए यह समझना जरूरी है कि बच्चों द्वारा बनाए गए हिज्जे सही हिज्जे लिखना सीखने के आड़े नहीं आते। इसके विपरीत, इनसे बच्चों को लिखना सीखने में मदद मिलती है। जब बच्चे अपने बनाए हिज्जों का प्रयोग करते हैं तो दरअसल वे फोनीम (ध्वनि इकाइयों), वर्णमाला के अक्षरों, और वर्णमाला के सिद्धांत में अपने बढ़ते आत्मविश्वास को प्रदर्शित कर रहे होते हैं। किसी बच्चे द्वारा पारंपरिक 'is' को 'iz' लिखना खुश होने की बात है क्योंकि यह सही दिशा में जाने का संकेत है। यह उस प्रकार की गलती है जो आपको यह दिखाती है कि शब्दों की आवाजों और हिज्जों के तर्क के बारे में बच्चा स्वतंत्र तरीके से, और काफी हद तक, विश्लेषणात्मक ढंग से सोच रहा है।

5.5 भाषा और साक्षरता कौशलों का आकलन

प्रभावी शिक्षण विद्यार्थियों के सीखने के मुताबिक अपने को ढाल लेता है। यह समझने के लिए कि विद्यार्थी क्या जानते हैं और क्या नहीं जानते, शिक्षकों को लगातार चलने वाले आकलन संचालित करना चाहिए। प्रारंभिक कक्षाओं में आकलन बहुमुखी होना चाहिए जिनमें ऐसे विभिन्न उपकरणों का समावेश हो जो सांस्कृतिक व विकासात्मक रूप से बच्चों के लिए उपयुक्त हों और जो कक्षा में दी जाने वाली शिक्षा से जुड़ पाते हों। शुरुआती बचपन के शिक्षक बच्चों के साथ घटी घटनाओं के विवरणों, जाँची जानी वाली चीजों की सूचियों (चौकलिस्टों) तथा रेटिंग स्केल्स (विभिन्न चीजों का बच्चों के द्वारा गुणात्मक स्तर तय करवाना) का उपयोग करने की सलाह देते हैं (हार्प और ब्रुअर, 2000)।

गुडमैन (1978) के अनुसार, ऐसे मानकीकृत उपायों के बजाय, जो जरूरी नहीं कि सीखने के आकलन में मदद करते हों, शिक्षक बच्चों को "ध्यान से देखने" के द्वारा साक्षरता की उन योग्यताओं पर ध्यान दे सकते हैं जो बच्चे कक्षाओं में लेकर आते हैं। कक्षा के भीतर, शिक्षकों को, विभिन्न तरीकों का इस्तेमाल करते हुए, रोजमर्रा के आधार पर, आकलनों का उपयोग करना चाहिए। इससे बच्चों की समझ की, और स्वतंत्र रूप से मेहनत करने की कोशिशों की जाँच की जा सकती है। शिक्षक, नियमित आधार पर, यह समझने के लिए विद्यार्थियों का आकलन करते हैं कि उन्होंने जो सीखा है वह उन्हें आत्मसात हुआ कि नहीं, और फिर वे इसके अनुसार अपने शिक्षण में उपयुक्त परिवर्तन करते हैं। कक्षाओं के आकलनों के अलावा, शिक्षा व्यवस्थाओं को विद्यार्थियों और शिक्षकों के प्रदर्शन से अवगत होना चाहिए ताकि वे उन्हें पर्याप्त सहयोग दे सकें। इसलिए, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय आकलन किसी शिक्षा प्रणाली की दुरुस्ती के संकेतक के रूप में, जवाबदेही निश्चित करने की व्यवस्था की तरह, और सुधार हेतु व्यवस्थित बदलाव करने के लिए काम आ सकते हैं। यह बहुत जरूरी है कि शिक्षकों को उचित साक्षरता आकलन, तथा उपयुक्त साक्षरता शिक्षण का प्रशिक्षण दिया जाए।

भाषा और साक्षरता शिक्षा की जटिलता यही है कि वह ऊपर उल्लिखित सभी अंगों की भूमिका को महत्वपूर्ण मानती है। लेकिन, यह जरूरी है कि भाषा और साक्षरता कार्यक्रम, शिक्षण को सन्दर्भ से जोड़ते समय छोटी उम्र के विद्यार्थियों को ध्यान में रखें।

भाषा तथा साक्षरता हासिल करने की पद्धतियां 6

यह खंड प्रारंभिक भाषा तथा साक्षरता को सिखाने की सबसे अच्छी पद्धति क्या हो सकती है, इसके बारे में उपलब्ध प्रमुख दृष्टिकोणों की छानबीन करेगा। पढ़ना और लिखना सिखाने की पद्धतियों और विधियों के बारे में पश्चिम में होने वाली चर्चाओं में अक्सर कटुता और बहस के स्वर उल्लेखनीय रूप से सामने आए हैं (चाल, 1967/1983, बोमैन इत्यादि, 2000, आदि)। जैसा कि समीक्षा करने वाले टिप्पणीकारों ने ध्यान दिलाया है, कक्षाओं में इस्तेमाल की जा रही यथास्थिति बनाए रखने वाली विधियों की तुलना में लगभग किसी भी नई विधि का बेहतर होना दर्शाया जा सकता है। पहली कक्षा में पढ़ने की शिक्षा के बारे में बड़े पैमाने पर किए गए सहकारी शोध कार्यक्रम (कोऑपरेटिव रिसर्च प्रोग्राम इन फर्स्ट ग्रेड रीडिंग इंस्ट्रक्शन स्टडी) नामक अध्ययन – जिसे फर्स्ट ग्रेड स्टडीज के नाम से भी जाना जाता है – ने पाया कि विद्यार्थियों की उपलब्धि में जिस एकमात्र कारक का सबसे अधिक निर्णायक प्रभाव पड़ता था, वह कक्षा का शिक्षक था, न कि कोई विशेष विधि (बॉड एवं डिकसट्रा, 1967/1997)। इससे इस बारे में गंभीर प्रश्न उठते हैं कि सही विधि की तलाश का कोई औचित्य है भी या नहीं, विशेष रूप से यह देखते हुए कि अक्सर शैक्षिक संदर्भ और स्थितियां बदलती रहती हैं।

इस दृष्टि पत्र में, हमारा मत है कि भाषा तथा साक्षरता सिखाने के लिए विशेष विधियों के बजाय मजबूत और सही सिद्धांतों की खोज करना ज्यादा लाभकारी है। सिद्धांतों के वैचारिक दायरे में उस आदर्श कल्पना (या लक्ष्यों) को जिसे साकार करने की ओर हम कार्यरत होते हैं, सिखाने और सीखने के संदर्भों को, और साथ ही उन लक्ष्यों को हासिल करने के लिए प्रभावशाली साधनों को भी ध्यान में रखा जाता है। इसके विपरीत, विधियां प्रमुख रूप से साधनों पर ध्यान केंद्रित करती हैं, और जरूरी नहीं कि वे लक्ष्यों तथा शैक्षिक संदर्भों में होने वाले बदलावों को भी पर्याप्त रूप से प्रतिबिंबित करें। हम यहाँ भारत तथा पश्चिम में ऐतिहासिक रूप से प्रमुख रहीं पद्धतियों की चर्चा से शुरुआत कर रहे हैं। फिर हमने विधि-उपरांत शिक्षण पद्धति (पोस्ट-मैथड पैडागॉजी) (कुमारावादिवेलु, 2001) – वह दृष्टिकोण जो हमें



विधियों से सिद्धांतों की ओर बढ़ने की राह दिखाता है – का वर्णन किया है। भारत में प्रचलित पद्धतियों की चर्चा एक पीछे के खंड में की जा चुकी है।

6.1. पश्चिम में भाषा तथा साक्षरता शिक्षा

6.1.1. पूर्ण शब्द पद्धति: बीसवीं सदी के खासे बड़े हिस्से में, लिपि को पहचानने पर ध्यान केंद्रित करने की पद्धति का पश्चिमी शैक्षिक विमर्शों में भी प्रभुत्व रहा है। शायद यह देखते हुए कि अंग्रेजी में अक्षरों तथा ध्वनियों के बीच के पारस्परिक संबंध की प्रकृति अनियमित होती है, उदाहरण के लिए, अमेरिका (संयुक्त राज्य अमेरिका) में लिपि सिखाने का पसंदीदा तरीका, “होल वर्ड (पूर्ण शब्द)” विधि कहलाता था, जिसमें आम उपयोग में अक्सर आने वाले, कुछ शब्दों को तब तक बार-बार प्रस्तुत किया जाता था, जब तक कि बच्चा उनको देखकर ही पहचानने नहीं लगता था। आम उपयोग में बहुत बार इस्तेमाल होने वाले शब्दों के दोहराए जाने वाले प्रस्तुतीकरण के साथ नियंत्रित रूप से नए शब्दों का समावेश करते जाने की इस पसंद की जाने वाली विधि के परिणामस्वरूप नियंत्रित शब्दावली वाली पाठ्यपुस्तकों (जैसे कि, डिक एंड जेन रीडर्स) का उत्पादन होने लगा, जो बीसवीं सदी के बड़े हिस्से में अमेरिका की प्रारंभिक भाषा तथा साक्षरता कक्षाओं में प्रमुख रूप से उपयोग की गई (हीबर्ट, 1999)। परंतु, इन पाठ्यपुस्तकों की भाषा मौखिक भाषा की स्वाभाविक लय और प्रवाह से मेल नहीं खाती थी, और उसकी बाद में “आधारहीन” कहकर आलोचना भी की गई – वह एक बँधी हुई, अस्वाभाविक भाषा थी जो बस शुरुआती पढ़ने वालों की पाठ्यपुस्तकों में ही पाई जाती थी (ब्लूम एवं नीटो, 1989)।

6.1.2. फोनिक्स (अक्षर-ध्वनि संबंध) आधारित पद्धति : बीसवीं सदी के शुरुआती हिस्से में, अक्षरों तथा ध्वनियों के बीच के पारस्परिक संबंध (फोनिक्स) को उपयोग करने का विचार भी मौजूद था, परंतु इस विधि को 1960 के दशक तक प्रमुखता नहीं मिली, जब यह पढ़ने के “युद्धों” में प्रथम पंक्ति में आ गई, जैसा की जीन चाल ने वर्णन किया है (1967/1983)। शिक्षा साहित्य में दो प्रकार की फोनिक्स शिक्षा पद्धतियों का उल्लेख देखा जा सकता है। संश्लेषित (सिंथेटिक) फोनिक्स पद्धति अक्षरों की ध्वनियों से शब्दों की ओर बढ़ती है, जबकि विश्लेषणात्मक (ऐनालिटिक) फोनिक्स पद्धति में पहले पूरे शब्दों को प्रस्तुत किया जाता है, और फिर उनका विश्लेषण करते हुए उनके घटक अक्षरों तथा अक्षर-ध्वनियों में तोड़ा जाता है (इस तरह यह पूर्ण शब्द विधि से भिन्न होती है जिसमें शब्दों का उनके अक्षर-ध्वनि घटकों में विश्लेषण नहीं किया जाता)। पूर्ण शब्द पद्धति तथा फोनिक्स पद्धति, दोनों में ही भाषा तथा साक्षरता कक्षाओं का प्राथमिक कार्य “बॉटम-अप (नीचे से ऊपर की ओर बढ़ने वाले) कौशलों को सिखाना माना जाता था – एक में शब्दों को हासिल करना, और दूसरी में अक्षरों, अक्षर-ध्वनियां, और फिर इनसे शब्दों को हासिल करना। डिस्टार (ओग्लेट्री, 1976) जैसी फोनिक्स-आधारित पद्धतियों ने 1970 के दशक में प्रमुखता हासिल की।

6.1.3. पूर्ण भाषा पद्धति: आधी बीसवीं सदी बीतने के बाद, जुड़े हुए विषयों और क्षेत्रों में हुए विकास कार्यों ने भाषा तथा साक्षरता शिक्षा को प्रभावित करना आरंभ कर दिया। सीखने के क्षेत्र के सिद्धांतकार, बच्चे कैसे सीखते हैं, इसे समझने के लिए व्यवहारवाद को छोड़कर अधिक

संज्ञान—आधारित सिद्धांतों की ओर बढ़ने लगे (शुएल, 1986)। भाषा हासिल करने के चोम्सकी के सिद्धांत को इस दौर में प्रमुखता प्राप्त हो गई, इस सिद्धांत ने सुझाया कि बच्चों के पास बोली हुई भाषा को हासिल करने की एक नैसर्गिक, अंतर्निर्मित क्षमता होती है, बशर्ते कि उन्हें उसके संपर्क में आने का पर्याप्त अवसर मिले। ऐसे विचारों के आधार पर, बच्चे कैसे पढ़ते हैं इसके बारे में एक नया दृष्टिकोण सामने आया, जिसे “होल लैंग्वेज (पूर्ण भाषा)” कहा गया। यह कई सिद्धांतकारों के विचार—मंथन से विकसित हुआ, जिनमें कैन एवं येट्टा गुडमैन (गुडमैन, 1967, गुडमैन एवं गुडमैन, 1977) प्रमुख थे। पूर्ण भाषा पद्धति ने सुझाया कि पढ़ना भी बोलने के जैसी ही एक ऐसी समानांतर भाषा व्यवस्था होती है, कि एक भाषाई रूप से समृद्ध वातावरण के संपर्क में आना, और उसमें डूबा होना, बच्चों के लिए भाषा के लिखित चिन्हों को हासिल करने के लिए पर्याप्त होता है। इस दृष्टिकोण में, पढ़ने के उनके बिलकुल शुरुआती प्रयासों से ही, बच्चों को अर्थ निर्मित करने वालों के रूप में देखा गया, जिसका निहितार्थ था कि समझने को साक्षरता शिक्षा में सबसे आगे और केन्द्र में रखा जाना चाहिए। पूर्ण भाषा आंदोलन ने पहले पश्चिम में, और हाल ही में, भारत में भी प्रगतिशील शिक्षाविदों का ध्यान आकर्षित किया।

6.1.4. संतुलित/समग्र पद्धतियां: चूँकि, 1960 तथा 1970 के दशकों में, फोनिक्स आंदोलन ने भी कुछ भागों में प्रमुखता हासिल कर ली थी, इसलिए इस नए दृष्टिकोण के आगमन से दोनों विचारधाराओं के अनुयाइयों के बीच इन सवालों की समझ को लेकर बहस छिड़ गई कि पढ़ना क्या है, बच्चे कैसे पढ़ना सीखते हैं, और इसलिए उन्हें पढ़ना सिखाने का सर्वोत्तम तरीका क्या होगा। इस बहस को आम तौर पर “रीडिंग वार्स (पढ़ने के युद्ध)” कहा जाता है। इक्कीसवीं सदी के मोड़ पर, अल्फाबेटिक (वर्णमाला आधारित) भाषाओं में — विशेष रूप से अंग्रेजी में, जिस तरह वह ज्यादातर अमेरिका में पढ़ाई जाती है — पढ़ने और लिखने के कौशलों को हासिल करने पर बड़ी मात्रा में हुए शोधकार्य का सार प्रस्तुत करने वाली दो प्रभावशाली रिपोर्टें प्रकाशित हुईं (प्रिवेन्शन ऑफ रीडिंग डिफ़ीकल्टीज (पढ़ने की कठिनाइयों की रोकथाम), स्नो, बर्न्स एवं ग्रिफिन, 1998, तथा नैशनल रीडिंग पैनल, 2000)। दोनों रिपोर्टों ने साक्षरता शिक्षा में एक ऐसी “संतुलित” या “समग्र” पद्धति अपनाई जाने की वकालत की, जो अर्थ—निर्मित करने, तथा चिन्हों (लिपि) पर अधिकार करने में बच्चों की सहायता करने, दोनों पहलुओं पर ध्यान देती हो। वातावरण में डूबे रहने के माध्यम से सांयोगिक सीखने, अर्थात् शिक्षा की परोक्ष विधियों, की तुलना में, शिक्षा की स्पष्ट और व्यवस्थित विधियों को (इन रिपोर्टों की मैटा—ऐनालिसिस — संयुक्त सांख्यिकीय विश्लेषण में) ज्यादा सक्षम पाया गया। एनआरपी (2000) ने पढ़ने के ऐसे पाँच “कम्पोनेंट्स (अवयवों)” को चिन्हित किया जिनको एक साथ पढ़ाए जाने की जरूरत होती है — ध्वनि संरचनाओं का बोध (फोनोलोजिकल अवेयरनेस), ध्वनियों—अक्षरों का परस्पर संबंध (फोनिक्स), प्रवाह, शब्द भंडार, तथा समझना। इस रिपोर्ट की कई — कार्यविधि संबंधी, राजनीतिक तथा अवधारणात्मक — आधारों पर आलोचना की गई है (गारन, 2001, क्राशेन, 2001)। परन्तु, इसके एक प्रमुख संदेश — कि प्रारंभिक साक्षरता के क्षेत्र में कई स्तरों पर एक साथ काम किया जाना चाहिए — को पश्चिम में अलग—अलग राजनीतिक विचारधाराओं को मानने वाले अनेक शिक्षाविदों ने अपना लिया है।

संतुलित/समग्र प्रतिरूप का अवधारणात्मक मूल्यांकन उसके सशक्त पहलुओं और सीमाओं, दोनों को उजागर करता है। इस प्रतिरूप की एक मुख्य ताकत यह है कि यह “ऊपर से नीचे की ओर” (अर्थ-आधारित), तथा “नीचे से ऊपर की ओर” (ध्वनि-चिन्ह), दोनों प्रक्रियाओं पर एक साथ ध्यान दिए जाने का सुझाव देता है। इसके साथ ही, यह प्रारंभिक साक्षरता के अर्ध-आधारित तथा कौशल-आधारित अवयवों को और आगे उनके उप-घटकों (जैसे कि ध्वनि संरचनाओं का बोध, ध्वनियों और अक्षरों का संबंध और प्रवाह) में विभाजित करता है, और इस तरह शिक्षाविदों के ध्यान को ऐसे महत्वपूर्ण पहलुओं की ओर आकर्षित करता है, जिन पर गौर किया जाना आवश्यक है। संतुलित पद्धति सिर्फ कौशलों से कहीं ज्यादा चीजों में संतुलन की माँग करती है। इनकी अवधारणा तीन प्रमुख सिद्धांतों के रूप में निर्मित की गई है (फिटजराल्ड, 1999)। इनमें पहला है, शिक्षकों को विद्यार्थियों के कौशलों और ज्ञान को विकसित करना चाहिए, जिसमें शामिल हैं: उनका चिन्हों को पहचानने का कौशल, समझने और साहित्य के प्रति प्रतिक्रिया करने के लिए उनका रणनीतिक ज्ञान, और उनका भावात्मक ज्ञान जिसमें विद्यार्थियों के पढ़ने के प्रेम को बढ़ावा देना शामिल हो। दूसरा सिद्धांत है, ऐसी शैक्षिक पद्धतियां उपयोग की जाएं जो अंतर्निहित रूप से विरोधी हों, जैसे कि फोनिक्स शिक्षा और पढ़ने की कार्यशाला। तीसरा है, विद्यार्थी विविध प्रकार की पढ़ने की सामग्री पढ़ें, जिनमें अदल-बदल कर पढ़ने वाली किताबों से लेकर कई स्तरों और नियंत्रित शब्दावली वाली किताबें और पढ़ने की बुनियादी किताबों तक सभी कुछ हो। फिटजराल्ड आगे अनुशंसा करते हैं कि एक संतुलित साक्षरता कार्यक्रम में, “स्थानीय ज्ञान”, जिसमें फोनिक्स, विन्यास तथा शब्दार्थ शामिल रहते हैं, “वैश्विक ज्ञान”, जिसमें पढ़े गए पाठों की समझ और पढ़ने वाले की प्रतिक्रिया शामिल रहती है, और “भावात्मक ज्ञान”, जिसमें पढ़ने के प्रति सकारात्मक रुझान और पढ़ने की इच्छा को निर्मित करना शामिल रहता है, प्राप्त करने में विद्यार्थियों की सहायता करने पर शिक्षकों को अपना ध्यान केंद्रित करने की जरूरत होती है (पृ. 102)। यह प्रतिरूप कई प्रकार की ऐसी शिक्षण तकनीकों का भी उल्लेख करता है – जैसे जोर से बोलकर पढ़ना, साझा रूप से पढ़ना, प्रतिरूप की नकल करके लिखना, अंतर्क्रियात्मक लेखन – जो उन तकनीकों जो ज्यादातर शिक्षक-केंद्रित होती हैं (बच्चों के लिए जोर से पढ़ना) तथा उन तकनीकों जो ज्यादातर विद्यार्थी-केंद्रित होती हैं (स्वतंत्र रूप से पढ़ना) के बीच में संतुलन बिटाती हैं (परिशिष्ट देखें)।

6.2 भाषा तथा साक्षरता सीखने के सिद्धांतों की प्राथमिकता

हाल के वर्षों में, जहाँ साक्षरता सीखने के संतुलित/समग्र प्रतिरूपों ने लोकप्रियता हासिल कर ली है, वहीं उसके कुछ ऐसे घटकों की, जिन्हें प्रारंभिक भाषा तथा साक्षरता के लिए बहुत महत्वपूर्ण माना जा सकता है, इन प्रतिरूपों में स्पष्ट रूप से व्याख्या नहीं की गई है। इसमें एक बेहद महत्वपूर्ण कमी है मौखिक भाषा का कोई उल्लेख न होना – जो कि वैसे तो सभी बच्चों के लिए बुनियादी रूप से निर्णायक होती है, परन्तु जिसका उन बच्चों के लिए विशेष महत्व होता है जो कक्षा में दूसरी भाषा सीखने वाले होते हैं। इसके अलावा, यह बच्चों के साहित्य या पाठ्यसामग्री के सौंदर्यात्मक पहलू से जुड़ाव को विकसित करने की जरूरत की भी स्पष्ट रूप से कोई चर्चा नहीं करता। पढ़ने वाले पाठ्यसामग्रियों से केवल जानकारियां हासिल करने के लिए ही उनसे नहीं

जुड़ते, बल्कि उनका उनसे लगाव आनन्द मिलने, साहित्यिक रस पाने आदि कारणों से भी होता है। समग्र प्रतिरूप की अवधारणा के संशोधित स्वरूप में इन अवयवों को जोड़कर इस तरह की कमियों को आसानी से दूर किया जा सकता है।

परन्तु, इस प्रतिरूप की आधार मान्यता को ही गैर-सांस्कृतिक तथा गैर-ऐतिहासिक बताते हुए उसकी आलोचना की गई है। क्या साक्षरता को निष्पक्ष योग्यताओं या कौशलों के ऐसे समूह की तरह समझा जाना चाहिए जो कि सभी बच्चों को, चाहे उनका सांस्कृतिक संदर्भ कैसा भी हो, प्रदान किया जाना चाहिए? इसे साक्षरता के "स्वायत्त" प्रतिरूप की तरह जाना जाता है, और संतुलित/समग्र प्रतिरूप को इसके एक उदाहरण की तरह देखा जा सकता है। इसके विपरीत, साक्षरता का "विचारधारात्मक" प्रतिरूप प्रतिपादित करता है कि साक्षरता को सांस्कृतिक प्रचलनों के ऐसे समूह के रूप में देखा जाना चाहिए जिसे किसी दिए गए संदर्भ में मौजूद सत्ता के ढांचों से जोड़ा जा सकता है (जयराम, 2009, स्ट्रीट, 1995, 2003)। विचारधारात्मक तथा सामाजिक-समीक्षात्मक प्रतिरूपों के अनुसार, जिन "निष्पक्ष" प्रतीत होने वाले कौशलों के समूह की अधिकांश प्रतिरूपों के द्वारा अनुशंसा की जाती है, वे वास्तव में किसी दी हुई संस्कृति के भीतर प्रभुत्व वाले सत्ता समूहों के द्वारा मूल्यवान समझे जाने वाले कौशल और प्रचलन होते हैं, जबकि उनके साथ ही उप-संस्कृतियों या अन्य संस्कृतियों में दूसरे, किन्तु कम शक्तिशाली कौशल और प्रचलन मौजूद हो सकते हैं, किन्तु जिनको या तो गलत समझा जाता है, या नजरअंदाज कर दिया जाता है। विचारधारात्मकप्रतिरूप सुझा सकता है कि बच्चों को, यहाँ तक कि बहुत छोटे बच्चों को भी, एक सामाजिक, ऐतिहासिक तथा राजनीतिक संदर्भ के भीतर प्रस्तुत किए गए पाठ्यक्रम को समझने के अवसर प्रदान किए जाने चाहिए (लूक, 1995, 2004)। उदाहरण के लिए, उपभाषा या बोली के उपयोग को पाठ्यक्रम में गैर-इरादतन ढंग से शामिल किए जाने या बाहर रखे जाने के बजाय, उसकी कक्षा में पड़ताल और चर्चा की जानी चाहिए, और बच्चों को उन राजनीतिक, सामाजिक और ऐतिहासिक परिवेशों की समीक्षा करने वाले उपभोक्ता बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जिनके भीतर भाषा तथा साक्षरता का उपयोग होता है। साक्षरता को हासिल किए जाने वाले निष्पक्ष कौशलों के समूह की तरह देखने के बजाय, इस अवधारणात्मक स्वरूप में उसे राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण के साधन के रूप में देखा जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, लूक एवं फ्रीबॉडी (1999), ने तर्क दिया है कि बच्चों को सिर्फ "चिन्हों को पहचानना", या "अर्थ निर्मित करना" ही नहीं सिखाया जाना चाहिए, बल्कि उन्हें उनके जीवन में पाठों का उपयोग करने, और उन पाठों की समीक्षा करने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

भाषा तथा साक्षरता क्या हैं, उन्हें बच्चे कैसे सीखते हैं, और उन्हें कैसे पढ़ाया जाना चाहिए, इनके बारे में मौजूद जटिल तथा उलझी हुई चर्चाओं को देखते हुए, इस दृष्टि पत्र का मत है कि हमारी प्रतिबद्धता सिद्धांतों के प्रति होनी चाहिए। कुमारवाडिवेलु (2002) तर्क देते हैं कि विधि की अवधारणा में ही अंतर्निहित सीमाएँ हैं। विधियाँ आदर्शात्मक संदर्भों के लिए निर्मित की गई आदर्शात्मक अवधारणाओं पर आधारित होती हैं, जबकि, सीखना और सिखाना सामान्य तौर पर ऐसे असंख्य, विविध प्रकार के, अनिश्चित संदर्भों में घटित होते हैं जिनकी कोई आदर्शात्मक विधि न

तो कल्पना कर सकती है, और न ही पहले से पूर्वानुमान लगा सकती है। इसके अलावा, विधियां संकीर्ण रूप से केवल कक्षा में अपनाई जाने वाली शैक्षिक रणनीतियों पर केंद्रित होती हैं, जो उन राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारकों पर विचार नहीं करतीं जिनमें सिखाना और सीखना घटित होते हैं। कुमारवाडिवेलु (1993) ध्यान दिलाते हैं कि उन शिक्षकों, जो किसी "विधि" के अनुयायी होने का दावा करते हैं, की भी बहुत अलग-अलग सैद्धांतिक अवधारणाएं, या कक्षा की कार्य प्रणालियां हो सकती हैं, जबकि हो सकता है कि वे शिक्षक, जो अलग-अलग विधियों का अनुसरण करने का दावा करते हैं, कक्षा में बहुत मिलती-जुलती कार्य प्रणालियों का इस्तेमाल करते हों। विधियों की तलाश करने के बजाय, वे एक "पोस्ट-मैथड (विधि-उपरांत)" शिक्षण पद्धति की ओर बढ़ने की वकालत करते हैं, जिसकी विशेषता "सिद्धांत-आधारित व्यवहारवाद" हो। वह केवल उस सबका "जो भी काम करता है" संकलित मिश्रण भर नहीं होती, बल्कि उसमें मार्गदर्शक सिद्धांतों या वृहत रणनीतियों के एक समूह के प्रति प्रतिबद्ध होना निहित होता है, जिनसे फिर, संदर्भों के प्रति संवेदनशील ढंग से, विभिन्न प्रकार की लघु-स्तरीय रणनीतियां या कक्षा की कार्य प्रणालियां निकाली जा सकती हैं। विधि-उपरांत शिक्षण पद्धति का इस्तेमाल करने में, कम से कम दो महत्वपूर्ण तरह से शिक्षकों पर भरोसा करना निहित होता है: पहला है, उनका उन वृहत-रणनीतिक सिद्धांतों को समझना जिनकी अनुशंसा की जाती है, और दूसरा है, उन सिद्धांतों पर आधारित उपयुक्त लघु-रणनीतियां निर्मित करने के लिए उनके संदर्भ-संबंधी तथा कक्षा-आधारित ज्ञान के विशद भंडार का उपयोग करना।

भारतीय संदर्भों में, प्रशिक्षित शिक्षकों के अभाव को, तथा शिक्षकों की स्वायत्तता के प्रति ऐतिहासिक और राजनीतिक प्रतिबद्धता के अभाव को देखते हुए, यह एक विराट बाधा की तरह प्रतीत हो सकता है। परंतु, शिक्षकों की शिक्षा के लिए पाठ्यचर्या की राष्ट्रीय रूपरेखा (नैशनल करीकुलम फ्रेमवर्क फॉर टीचर ऐजुकेशन – एनसीएफटीई, 2010) ने, तथा शिक्षकों के प्रसिद्ध/प्रमुख शिक्षाविदों (बत्रा, 2005, ढोलकी, 2010, किंगडन एवं सिपाहीमलानी-राव, 2010) ने, शैक्षिक प्रक्रिया में शिक्षकों को केंद्रीय भागीदार मानते हुए, शिक्षा के पेशे का बौद्धिकरण करने की जरूरत की ओर ध्यान दिलाया है।

6.3 साक्षरता/भाषा की अच्छी शिक्षण पद्धति के सिद्धांत

सिद्धांत 1: मौखिक भाषा को साक्षरता से जोड़ा जाना जरूरी है: साक्षरता की शिक्षा मौखिक भाषा(ओं) के बच्चों के ज्ञान से घनिष्ठ रूप से जुड़ी होती है, और उसी के आधार पर आगे बढ़ती है। कक्षा में मौखिक भाषा का उपयोग छोटी उम्र के सीखने वालों को घर तथा स्कूल के बीच में संबंध निर्मित करने में मदद करता है। साक्षरता को मौखिक भाषा से कटे हुए तरीके से नहीं सिखाया जाना चाहिए। यह ध्वनि संरचनाओं का बोध तथा भाषा के ढांचागत पहलुओं को निर्मित करने में तथा कक्षा में होने वाली पढ़ने और लिखने की गतिविधियों से अर्थपूर्ण संबंध बनाने में बच्चों की सहायता करता है।

सिद्धांत 2: लिखने पर जोर: मौखिक भाषा को हासिल करने की क्षमता नैसर्गिक हो सकती है, परंतु इसका कोई प्रमाण नहीं है कि लिखित भाषा को हासिल करने की क्षमता भी नैसर्गिक होती है। चित्र बनाना और लिखना बच्चों के लिए स्वयं को अभिव्यक्त करने के साधन होने चाहिए। बच्चों को लिखित लिपि चिन्हों की प्रणाली को हासिल करने के लिए हमें उन्हें नियोजित तथा व्यवस्थित अवसर प्रदान करने की जरूरत है।

सिद्धांत 3: बहुभाषाई योग्यताएं विकसित करें: हमारे जैसे बहु-भाषाई समाज में, हो सकता है कि "पहली भाषा" को "दूसरी भाषा" की साक्षरता से अलग करना व्यावहारिक या अवधारणात्मक रूप से जायज न ठहराया जा सके, इसके बजाय हमें उन विभिन्न प्रक्रियाओं की गहरी समझ होनी चाहिए जो साक्षरता हासिल करने को सहारा देती है, और हमें बच्चों के समूहों के लिए उनकी विशिष्ट जरूरतों के आधार पर उत्तरदायी कार्यक्रम निर्मित करने में समर्थ होना चाहिए।

सिद्धांत 4: शिक्षण के समग्र प्रतिरूप पर ध्यान केंद्रित करें: प्रमाण तथा इतिहास सुझाते हैं कि शायद सबसे अच्छा यह होगा कि न तो कौशलों पर आधारित (नीचे से उपर वाले) प्रतिरूप को और न ही प्रक्रिया-आधारित (ऊपर से नीचे वाले) प्रतिरूप को शिक्षण की "सही" विधि के रूप में चुना जाए, बल्कि सबसे अच्छा यह होगा कि प्रत्येक के पहलुओं को साक्षरता शिक्षण के एक समग्र प्रतिरूप में समेकित किया जाए।

4.1 न्यूनतम स्थिति में, इस प्रतिरूप में उन प्रक्रियाओं पर ध्यान देने को समाहित करना चाहिए जो समझ, शब्दावली, प्रवाह, शब्दों को पहचानने, अक्षरों का ज्ञान, तथा स्वर संरचनाओं के बोध को निर्मित करती हैं।

4.2 इसके अतिरिक्त, इसमें साहित्य को सराहने की क्षमता, और विभिन्न प्रकार की शैलियों में विभिन्न प्रयोजनों के लिए लिखने की योग्यता निर्मित करने को समाहित करना भी जरूरी है।

भाषा तथा साक्षरता शिक्षा के उद्देश्यों को दृष्टि में रखते हुए, इनमें से प्रत्येक अवयव पर व्यवस्थित शैक्षणिक ध्यान दिया जाना नितांत आवश्यक है।

सिद्धांत 5: साक्षरता शिक्षण को सामाजिक-सांस्कृतिक तथा सामाजिक-राजनीतिक आधारों पर निर्मित कार्यविधियों के एक समूह की तरह देखा जाना चाहिए: साक्षरता कोई "स्वायत्त कौशल" नहीं होती, बल्कि वह सामाजिक-सांस्कृतिक तथा सामाजिक-राजनीतिक आधारों पर निर्मित कार्यविधियों का समूह होती है।

5.1 साक्षरता का दायरा केवल लिपि चिन्हों को पहचानने या अर्थ निर्मित करने तक सीमित नहीं होता। विद्यार्थियों को पाठ्यसामग्री के उपयोगकर्ता तथा आलोचक की तरह कार्य करने के लिए भी सशक्त बनाया जाना चाहिए।

5.2 साक्षरता की शिक्षण पद्धति को शब्दों को केवल पाठ से उनके संबंधों के संदर्भ में समझने से आगे बढ़कर शब्दों के संसार से संबंधों पर विचार करने की जरूरत है।

5.3 संवाद समूह भाषा के हमारे उपयोग को आकार देते हैं। भाषा में हमारी योग्यता का आकलन केवल विशेष संवादों में हमारी निपुणता की दृष्टि से ही किया जा सकता है। सीखने वालों के लिए, प्राथमिक संवादों की अपेक्षा, द्वितीयक संवादों के ज्यादा कठिन होने की संभावना है।

5.4 भिन्न-भिन्न समुदाय अपने बच्चों का सामाजीकरण करके उन्हें पाठ्यसामग्री से चीजों को अलग-अलग तरीकों से ग्रहण करने वाले बना देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप स्कूल की साक्षरताओं में कुछ बच्चे सफल होते हैं, और अन्य असफल हो जाते हैं।

5.6 वंचित समुदायों के बच्चों को स्पष्ट रूप से पढ़ाने के द्वारा हमें सत्ता के चिन्हों तक उनकी पहुँच निर्मित करना चाहिए।

सिद्धांत 6: साक्षरता शिक्षण पद्धति के धीरे-धीरे जिम्मेदारी छोड़ने वाले प्रतिरूप का उपयोग

करें: प्राथमिक शिक्षा परिवेशों में, यह समझदारी की बात हो सकती है कि शिक्षण पद्धति के धीरे-धीरे जिम्मेदारी छोड़ने वाले (ग्रेजुअल रिलीज ऑफ रिसपांसिबिलिटी -जीआरआर) प्रतिरूप का उपयोग किया जाए, जो "मैं करूँ-हम करें-तुम करो" पद्धति का (जिस हद तक संभव हो) अनुसरण करता है। इसके लिए साक्षरता सिखाने के लिए कई तरह की शैक्षणिक चर्चाओं का समावेश करने की जरूरत होगी - जैसे कि, जोर से पढ़ना/लिखे हुए की नकल करके लिखना, साझा रूप से पढ़ना/लिखना, मार्गदर्शित पढ़ने/लिखने की कार्यशालाएं, स्वतंत्र रूप से पढ़ना/लिखना, आदि (परिशिष्ट देखें)। साक्षरता प्रक्रियाओं के स्पष्ट प्रतिरूप प्रस्तुत करने से बच्चों को विभिन्न स्तरों पर काम करने में मदद मिलती है। बच्चों के जोड़ों और छोटे समूहों को दिए जाने वाले साक्षरता कार्यों को सजग रूप से शिक्षण में शामिल करने के द्वारा यह कक्षा में अनुकूल वातावरण निर्मित करता है।

सिद्धांत 7: अच्छा साहित्य कक्षा में शिक्षण पद्धति का अभिन्न अंग होना चाहिए: बच्चों को

बिलकुल शुरुआती उम्र से ही अच्छे साहित्य के संपर्क में आना चाहिए। कक्षाओं में किताबों के कोने या कक्षा पुस्तकालय बनाने के द्वारा उच्च-गुणवत्ता वाले, तथा उम्र और कक्षा के स्तर के अनुरूप बच्चों के साहित्य तक उनकी पहुँच सुनिश्चित करना एकदम प्रारंभिक कक्षाओं से ही साक्षरता शिक्षण का नितांत आवश्यक हिस्सा होता है। बच्चों की घर तथा स्कूल की भाषाओं में, विभिन्न प्रकार की बच्चों की किताबों (कविताएं, चित्र पुस्तकें, कहानी की किताबें, गैर-कथा पुस्तकें, आदि) को नियमित रूप से कक्षा में इस्तेमाल किया जाना चाहिए। उन्हें जोर से पढ़ना कक्षा में बातचीत को संभव बनाने का एक बहुत बढ़िया तरीका होता है।

6.4 कुछ कार्यक्रमों से सीखना: भारतीय संदर्भ में किए गए शोधकार्य ने भी कुछ ऐसे महत्वपूर्ण अवयवों को चिन्हित किया है जिन पर कक्षा में शिक्षण के लिए विचार किए जाने की जरूरत है। कुछ संगठनों ने ऐसा साक्षरता कार्यक्रम विकसित किया है जो छोटी उम्र के सीखने वालों के स्थानीय सांस्कृतिक और भाषाई संदर्भ को ध्यान में रखता है। इनमें से कुछ संगठन हैं: मध्य प्रदेश में एकलव्य (2002), फल्टन, महाराष्ट्र में प्रगट शिक्षण संस्था, राजस्थान में ऑर्गेनाइजेशन फॉर अर्ली लिटरेसी प्रमोशन (जयराम, 2008), भोपाल में मुस्कान तथा एनसीईआरटी (अर्थात् उनका पढ़ने का कार्यक्रम)

यहाँ एक उदाहरण लेते हुए, जयराम (2008) ने छोटी उम्र के सीखने वालों में ध्वनि संरचनाओं के कौशलों, वर्तनी (हिज्जों) का ज्ञान तथा अर्थ निर्मित करने की क्षमताओं के विकास के लिए एक पद्धति विकसित की थी। इस पद्धति में, हिन्दी के अक्षरों को उनके उपयोग में आने की आवृत्ति, ध्वनियों के अंतर और लिखित रूपों के आधार पर, सात समूहों, जिन्हें वर्ण समूह कहते हैं, में बाँटा गया था। वर्ण समूह की इस पद्धति का उपयोग एक साथ अक्षरों, शब्दों, और पाठों का परिचय करवाने के लिए किया गया। इस प्रयास ने बच्चों को उनकी भाषाओं और संदर्भों से शब्द निर्मित करने में मदद करने, और उन्हें अर्थपूर्ण तथा कक्षा के लिए उपयुक्त पाठ्य सामग्री से परिचित करवाने पर भी ध्यान केंद्रित किया। जो बच्चे कक्षा के स्तर के अनुरूप प्रदर्शन नहीं कर रहे थे, उनके एक-एक साथी (पठन साथी) के साथ जोड़े बनाए गए। इस तरह के प्रयास एक "समेकित प्रक्रिया" को रेखांकित करते हैं जिसे छोटे बच्चों की सभी कक्षाओं के अनुरूप ढाला जाना बहुत जरूरी है। कक्षाओं में मौजूद विविधता के चलते, कक्षा में सीखने के सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील और गैर-आक्रामक वातावरणों की भी आवश्यकता होती है, जो, कुछ मोटे तौर पर परिभाषित किए मानदण्डों के भीतर, सीखने वालों को सीखने के उनके अपने रास्तों पर चलने की पर्याप्त जगह और अवसर प्रदान करते हैं (जयराम, 2008)। कक्षा की शिक्षण पद्धति और शिक्षका-विद्यार्थी के बीच की अंतर्क्रियाओं में इस यथार्थ की गूँज होनी चाहिए, और उन्हें इसके प्रति संवेदनशील ढंग से उत्तरदायी होना चाहिए।

प्रारंभिक भाषा तथा साक्षरता विकास के लिए ऊपर के खंड पृष्ठभूमि, संदर्भ तथा पिछले वर्षों में उभर कर सामने आई विभिन्न पद्धतियों और सैद्धांतिक बहसों की जानकारी प्रदान करते हैं। इन पद्धतियों के समीक्षात्मक पुनरीक्षण, और संबंधित अनुभवों के आधार पर, इस दृष्टि पत्र ने उन प्रमुख सिद्धांतों के रूप में अपना स्पष्ट मत प्रस्तुत किया है, जिनके मार्गदर्शन में प्रारंभिक वर्षों में भाषा तथा साक्षरता के लिए एक पाठ्यक्रम विकसित किया जाना चाहिए। इसके लिए नीति तथा व्यवहार दोनों स्तर पर छोटे बच्चों को पढ़ना और लिखना सिखाने की प्रक्रिया की समझ में, एक स्पष्ट आधारभूत परिवर्तन नितांत आवश्यक है। मोटे तौर पर कहें, तो ये सिद्धांत चार मुख्य क्षेत्रों में केन्द्रित स्वरूप में व्यक्त हो सकते हैं जिनके आधार पर ही इस क्षेत्र में कोई भी सुधार किए जाने की जरूरत है।

- a. भाषा तथा साक्षरता सीखने की प्रक्रिया स्कूल में प्रवेश करने पर आरंभ नहीं होती, बल्कि उसे शुरूआती बचपन से प्राथमिक स्कूल की अवस्था पर चलने वाली एक सतत, अविच्छिन्न प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए। इसके लिए, नीचे से विभिन्न चरणों में ऊपर तक पाठ्यक्रम में निरंतरता होना आवश्यक है।
- b. बच्चों में भाषा तथा साक्षरता कौशलों का विकास घनिष्ठ रूप से परस्पर जुड़ा रहता है, इसलिए, क्रमिक पद्धति के विपरीत, इसके लिए एक साथ काम करने वाली ऐसी पद्धति की आवश्यकता होती है जो, परस्पर जुड़े हुए ज्ञान, कौशलों और रवैयों की दृष्टि से, दोनों पहलुओं पर समग्रता से काम करे।
- c. भाषा तथा प्रारंभिक साक्षरता के विकास के लिए एक प्रशिक्षित शिक्षक की आवश्यकता होती है, जो एक अंतर्क्रियात्मक और सक्षम बनाने वाला वातावरण निर्मित करने के द्वारा बच्चों के लिए सीखने के अवसरों को ढांचागत स्वरूप दे सके। इस वातावरण को पर्याप्त और उपयुक्त बच्चों के साहित्य तथा अन्य छपी हुई सामग्री के सहयोग से निर्मित किया जाना चाहिए, ताकि ये सब बच्चे के सीखने के परिवेश का हिस्सा हों।
- d. भाषा तथा प्रारंभिक साक्षरता शिक्षा के परिणामस्वरूप न केवल इन कौशलों का विकास, बल्कि समीक्षात्मक सोच और तर्ककौशल का भी विकास होना चाहिए।

भाषा तथा प्रारंभिक साक्षरता सीखने की समझ में इन बदलावों के नीति और व्यवहार, दोनों में विभिन्न स्तरों पर स्पष्ट निहितार्थ निकलते हैं।

7.1. नीति निर्माता

कक्षा के भीतर भाषा और साक्षरता के लक्ष्यों को हासिल करने के लिए यह बहुत जरूरी है कि कक्षाएं छोटी रहें और सभी स्तरों (पूर्व-स्कूल तथा कक्षा 1 और 2) के लिए एक-एक समर्पित शिक्षक हों। इसके अलावा, एक परिपूर्ण प्रारंभिक भाषा तथा साक्षरता कार्यक्रम में सहयोग करने के लिए आवश्यक अवधारणात्मक समझ विकसित करने के उद्देश्य से जिला और ब्लाक स्तर के शिक्षा विभाग के अधिकारियों की उन्मुखीकरण (ओरिएंटेशन) कार्यशालाएं प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाने की जोरदार अनुशंसा की जाती है। ऐसे प्रयास के लिए आवश्यक सहयोग विभिन्न स्तरों पर होता है, जैसा कि नीचे दर्शाया गया है:

7.1.1 भाषा तथा साक्षरता सिखाने के दृष्टिकोण में किए जाने वाले बदलाव की पैरवी करने के लिए और शिक्षकों को उसे समझने में सक्षम बनाने के लिए, पूर्व-स्कूल स्तर और प्राथमिक स्तर, दोनों के संदर्भ में, शिक्षकों की शिक्षा के कार्यक्रमों – जो सेवापूर्व भी और सेवाकाल के दौरान भी होना चाहिए – में सहयोग करने के लिए पूरक पाठ्यसामग्री और/या श्रुत्य दृश्य सामग्री उपलब्ध कराया जाना बेहद जरूरी है। इन कार्यक्रमों में न केवल इस पद्धति के दृष्टिकोण तथा समझ में हुए बदलाव पर जोर दिया जाना चाहिए, बल्कि ऊपर बताए गए जोर देने वाले चारों क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुए, तथा छपी हुई सामग्री के उपयोग को शामिल करते हुए, इसे कक्षा में “कैसे” लागू किया जाए, इस पर भी ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। चूंकि शोध से पता चलता है कि बस एक बार के प्रशिक्षण की तुलना में, वास्तविक शैक्षिक स्थानों पर की जाने वाली सतत निगरानी अधिक प्रभावशाली होती है, इसलिए प्रशिक्षण की रणनीति या योजना में ऐसी निगरानी करने वाले मार्गदर्शकों – जिनमें ब्लाक संसाधन केंद्रों (ब्लाक रिसोर्स सेंटर्स – बीआरसीज) और संकुल संसाधन केंद्रों (क्लस्टर रिसोर्स सेंटर्स – सीआरसीज), और यहाँ तक कि समेकित बाल विकास सेवाओं (इंटीग्रेटेड चाइल्ड डेवलपमेंट सर्विसेज –आईसीडीएस) के निरीक्षक भी शामिल होना चाहिए – के प्रशिक्षण तथा उनकी सहायता पर भी गहराई से विचार किया जाना चाहिए।

7.1.2 नई शिक्षा नीति में इस बात के महत्व पर जोर देने की जरूरत है कि बच्चों के साहित्य को कक्षाओं के मुताबिक अलग-अलग स्तरों के स्वरूप में विकसित किया जाए और उपलब्ध कराया जाए। उसमें जोर से पढ़ी जाने वाली बड़ी किताबें हों तथा विभिन्न प्रकार के चार्ट व कार्ड हों जिन्हें देशी भाषाओं तथा अंग्रेजी में सामाजिक संदर्भों को ध्यान में रखते हुए बनाया गया हो, और इन्हें सभी स्कूलों में उचित मूल्य पर उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इस प्रक्रिया को सुगम बनाने के लिए, दिशानिर्देश बनाना चाहिए और संभवतः प्रकाशकों को इन्हें छापने का कागज रियायती दरों पर उपलब्ध कराया जा सकता है। ऐसा होने से शिक्षा के अधिकार या आरटीई (2009) के तहत स्कूल पुस्तकालयों को मिलने वाली अनुदान राशि से वर्तमान में स्कूल जिस तरह की पाठ्य सामग्री हासिल कर रहे हैं, उससे कहीं ज्यादा उपयुक्त व सुनियोजित पाठ्य सामग्री उन्हें मिल जाएगी।

7.1.3 कक्षा के भीतर और सार्वजनिक क्षेत्र में प्रयोग की जाने वाली आकलन की प्रक्रियाओं में इस परिपूर्ण बदलाव को समाहित किया जाना चाहिए। इसमें खासतौर पर समझ के साथ पढ़ने और समीक्षात्मक ढंग से सोचने तथा प्रवाहमय ढंग से पढ़ने जैसी योग्यताओं पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

7.1.4 अंग्रेजी भाषा में योग्य शिक्षकों की कमी के चलते, सरकार को चाहिए कि वह नए तकनीकी उपकरणों का इस्तेमाल करके बनाई जाने वाली, सामाजिक संदर्भों में प्रासंगिक, ऑडियो विजुअल सामग्री के उपयोग को बढ़ावा दे। इसे संभवतः सार्वजनिक निजी भागीदारी के तरीके से तैयार किया जा सकता है, और, इस बात को ध्यान में रखते हुए कि कई राज्यों में अब कक्षा 1 से ही अंग्रेजी पढ़ाई जाती है, इस सामग्री को पर्याप्त प्रशिक्षण के साथ सभी स्कूलों में उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

7.1.5 अगर भागीदारी पर आधारित लोकतंत्र को जीवित रखना है तो यह जरूरी है कि त्रिभाषा सूत्र को सख्ती से लागू करने के बजाय हम हर बच्चे की भाषा को व्यक्त किए जाने की स्वतंत्रता दें। बहुभाषाई विशेषता को बचाकर रखना इस देश में भाषा संबंधी योजनाओं का केन्द्र बिन्दु होना चाहिए (एनसीईआरटी, 2006)। इस तरह की योजना बनाते समय किसी खास क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषाओं पर बहुत बारीकी से ध्यान दिया जाना चाहिए।

7.2 पाठ्यक्रम बनाने वाले

यह बहुत जरूरी है कि शुरुआती बचपन की अवस्था के निर्णायक महत्व को, और इस दौर के पाठ्यक्रम की प्राथमिक स्तर के पाठ्यक्रम के साथ निरंतरता बनाए रखने की जरूरत को राष्ट्रीय और राज्यों की नीतियों और पाठ्यचर्या की रूपरेखाओं में उचित प्राथमिकता दी जाए। बारहवीं पंचवर्षीय योजना में पाठ्यक्रम की बनावट के सन्दर्भ में पूर्व-स्कूल शिक्षा और प्राथमिक स्कूल की शुरुआती कक्षाओं की कल्पना 'सीखने की प्रारंभिक इकाई' के रूप में करने की जरूरत पर जोर दिया गया है। इस अवधारणा को पाठ्यक्रम बनाने वाली सभी संस्थाओं और लोगों के द्वारा सभी स्तरों पर अपनाए जाने की जरूरत है। पाठ्यक्रम इतना अर्थपूर्ण होना चाहिए कि बच्चे उससे खुद को जोड़ सकें। उन पर ऐसी अलग-थलग गतिविधियां नहीं थोपी जानी चाहिए जो बस उन्हें व्यस्त रखें, और जिनका भाषा और साक्षरता शिक्षा से कोई वास्ता न हो।

7.3 शिक्षकों के शिक्षक और शिक्षक

7.3.1 सभी सरकारी कार्यक्रमों में प्रारंभिक भाषा और साक्षरता से जुड़ा शिक्षकों की शिक्षा का एक मजबूत अंग बनाया जाना जरूरी है। आदर्श कक्षाओं का निरीक्षण करना शिक्षकों की शिक्षा का एक जरूरी हिस्सा होना चाहिए, और इसके साथ ही बच्चों के पढ़ने और लिखने के कौशलों को निर्मित करने के लिए कक्षा में उपयोग की जाने वाली विशेष शिक्षण विधियों के बारे में शिक्षकों को स्पष्ट शिक्षा दी जानी चाहिए। इस उद्देश्य के लिए नमूने के आदर्श स्थानों का विकास करना बहुत महत्वपूर्ण काम होगा। कक्षा में पढ़ाने के तरीके पर केन्द्रित उच्च गुणवत्ता वाली ऑडियो-वीडियो सामग्री को भी शिक्षक प्रशिक्षण प्रक्रिया में शामिल किया जा सकता है ताकि उसे कक्षा की प्रक्रियाओं से जोड़ा जा सके।

7.3.2 उन सन्दर्भों को समझना बहुत जरूरी है जिनके ढांचे के अंतर्गत भाषा और साक्षरता की शिक्षा दी जाती है। बच्चों के घर और स्कूल के बीच, संस्कृति और भाषा की अनुरूपता होना सभी बच्चों

के लिए (न कि सिर्फ बहुभाषाई परिस्थितियों में जनजातीय बच्चों के लिए) बेहद जरूरी है। भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषाई विविधता के कारण हमें यह विविधता कक्षाओं में भी दिखाई देती है। इससे घर की भाषा और स्कूल की भाषा के बीच एक फासला भी बन सकता है। यह सिर्फ जनजातीय सन्दर्भ में ही आम तौर पर नहीं देखा जाता, बल्कि देश भर के उन स्कूलों में भी देखा जाता है जहाँ शिक्षा का लोकप्रिय माध्यम अब अंग्रेजी है। ऐसी स्थितियों के लिए यह खासतौर पर जरूरी है कि भाषा और प्रारंभिक साक्षरता शिक्षा से जुड़ी समस्याओं की तरफ एक साथ ध्यान दिया जाए न कि सिर्फ वर्णमाला के सहारे अंग्रेजी में पढ़ाना शुरू कर दिया जाए, जैसा कि आम चलन है।

- a. अधिकांश बच्चे ऐसे घरों से नहीं आते जहाँ उन्हें छपी हुई सामग्री में समृद्ध वातावरण प्रदान किया जा सकता है, जो उन्हें उनके उभरते हुए साक्षरता कौशलों को विकसित करने में समर्थ बना सके, और पढ़ना तथा लिखना सीखने में उनकी रुचि को बढ़ावा दे सके। पूर्व-स्कूल चरण में, बच्चों को पढ़ने और लिखने की तैयारी कराने वाली ऐसी गतिविधियों से बहुत लाभ होगा, जैसे कि कहानी सुनाना, निशुल्क और मार्गदर्शित बातचीत और गतिविधियां जैसे भाषा के खेल, शब्दावली बढ़ाने और मौखिक अभिव्यक्ति के लिए कविताएं और पहेलियां, ध्वनि और दृश्य के संबंध को समझने की गतिविधियां, ध्वनि इकाइयों का गहरा बोध और छपी हुई सामग्री से संपन्न परिवेश में पढ़ने की सही दिशाओं का बोध निर्मित करना। गतिविधि कोने जैसे गुड़ियों के कोने, चित्र पुस्तकों के कोने और ब्लॉक खिलौनों तथा जगह बदल-बदल कर टुकड़ों को सही जमाने वाले खेलों के कोने जो नियोजित ढंग से उन्हें मुक्त रूप से खेलने के अवसर दें। ये सभी गतिविधियां बच्चों में किताबों से रिश्ता जोड़ने, समीक्षात्मक ढंग से सोचने और विकास करने के लिए, सीखने में रुचि पैदा करने के लिए, और साथ ही किए जा रहे कार्य में जुटे रहने के लिए – जिन सभी क्षमताओं को इस दृष्टि पत्र में स्कूल की सफलता के लिए बेहद महत्वपूर्ण माना जा रहा है – मजबूत बुनियाद प्रदान कर सकती हैं।
- b. कक्षा में होने वाले शिक्षण का पूरा जोर, सिर्फ शब्दों और अक्षरों को पहचानने पर न होकर, समझ के साथ पढ़ने और समीक्षात्मक ढंग से सोचने पर होना चाहिए। ऐसी बहुत सी गतिविधियां हो सकती हैं जिनका प्रयोग करके समझ के साथ पढ़ने की कला विकसित की जा सकती है, जैसे कि ऊँचा बोलकर पढ़ना, बच्चों के साथ चर्चाएं करना या उनकी आपस में चर्चाएं कराना, और अर्थ निर्मित करने वाली गतिविधियां करना।
- c. प्रत्येक कक्षा में पुस्तकालय बनाने के माध्यम से बच्चों को छपी हुई सामग्री से भरपूर वातावरण प्रदान किया जाना चाहिए। इसके अलावा, समुदाय के लोगों के लिए भी लघु-पुस्तकालय खोले जा सकते हैं ताकि बच्चों के माता पिता या बाकी परिवार वाले वहाँ से किताबें घर ले जा सकें। इन पुस्तकालयों में सचित्र किताबें भी रखी जा सकती हैं, और बहुत कम पाठ वाली किताबें रखी जा सकती हैं, जिन्हें कम साक्षर माता-पिता भी अपने बच्चों को पढ़कर सुना सकते हैं। वास्तविक जीवन से संबंध जोड़ना बच्चों के लिए बहुत जरूरी है ताकि वे जो स्कूल में सीख रहे हों उसे स्कूल के बाहर की उनकी जिंदगियों से जोड़कर प्रदर्शित कर सकें। बच्चों की किताबों को चुनने के लिए स्पष्ट दिशानिर्देश दिए जाना चाहिए (पढ़े भारत बढ़े भारत 2014)।

7.3.3 बेहतर तो यही होगा कि शिक्षक उसी भाषाई पृष्ठभूमि का हो जिसके बच्चे हैं। लेकिन, अक्सर ऐसा संभव नहीं हो पाता, और उस स्थिति में शिक्षकों का ऐसे शैक्षणिक तरीकों से परिचय करवाया जाना चाहिए जिनके तहत कक्षा के भीतर संसाधन के रूप में कई भाषाओं का इस्तेमाल किया जाता है। शिक्षकों को इतना सक्षम भी बनाया जाना चाहिए कि वे बच्चों का घर की भाषा से निकलकर स्कूल की भाषा को आसानी से अपनाना सुनिश्चित कर सकें।

- a. भाषा और साक्षरता शिक्षा की पद्धतियों और तरीकों के अलावा, शिक्षकों को उनके विद्यार्थियों के नजरियों तथा मान्यताओं के बारे में, और वे किस तरह विद्यार्थियों के प्रदर्शन को प्रभावित करते हैं, इसके बारे में भी गहरी समझ दी जानी चाहिए।
- b. भाषा और प्रारंभिक साक्षरता की इस समग्र पद्धति को नियमित रूप से कक्षा में क्रियान्वित करने के लिए, उसके निहितार्थों के बारे में शिक्षकों को बच्चों के साथ वास्तविक कक्षा की परिस्थितियों में व्यावहारिक “करके दिखाने वाला” प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। इसके अलावा, शिक्षकों को कक्षा की व्यवस्था और प्रबंधन के बारे में, तथा बच्चों के साथ काम करने के ऐसे संवादयुक्त तरीकों के बारे में भी प्रशिक्षित किया जाना चाहिए, जो बच्चे के सीखने को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक माने गए हैं। (कौल, भारगढ़, शर्मा, 2014)।

7.4 माता-पिता और समुदाय

इस कार्यक्रम के उद्देश्यों के बारे में तथा बच्चों को सहयोग देने के तरीकों के बारे में बच्चों के अभिभावकों और समुदाय के साथ काम करना बेहद जरूरी है। वंचित पृष्ठभूमि के अभिभावकों के साथ काम करना और भी जरूरी है क्योंकि हो सकता है कि वे स्वयं को अपने बच्चों की शिक्षा में कोई योगदान दे सकने के काबिल न मानते हों। स्कूल और परिवार के बीच सहभागिता होने के लिए जरूरी है कि ऐसे माता-पिता भी उन तरीकों को समझें जिनके द्वारा वे, अपने सीमित समय और आर्थिक मजबूरियों के बावजूद, अपने बच्चों को सहयोग दे सकते हैं। माता-पिता/दादा-दादी और समुदाय के अन्य लोगों की मदद से लोककथाओं, गानों, पहेलियों और कविताओं का संग्रह करके, तथा उन्हें बच्चों के लिए उनकी घरेलू भाषा के पाठों में बदलकर व उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों के अनुरूप ढालकर, घर की भाषा और स्कूल की भाषा के बीच के फर्क को प्रभावी ढंग से दूर किया जा सकता है।



References

Agnihotri, R. K. (2007). Identity and multilinguality: The case of India. In A. B. M. Tsui & J.W. Tollefson (Eds.), *Language policy, culture, and identity in Asian contexts* (pp. 185-204). Mahwah, NJ: Lawrence Erlbaum Associates

Annual Status of Education Report (Rural). (2012). New Delhi (Released January 17, 2013). Retrieved from http://img.asercentre.org/docs/Publications/ASER%20Reports/ASER_2012/fullaser2012report.pdf

Annual Status of Education Report (Rural). (2013). New Delhi (Released January 15, 2014). Retrieved from http://img.asercentre.org/docs/Publications/ASER%20Reports/ASER_2013/ASER2013_report%20sections/aser2013fullreportenglish.pdf

Armbruster, B., Lehr, F., & Osborn, J. (2001). Put reading first. *Ann Arbor, MI: Center for the Improvement of Early Reading Achievement (CIERA)*.

Ashton-Warner, S. (1963). *Teacher*. New York: Simon & Schuster.

Baumann, J. F., Hoffman, J. V., Moon, J. S., & Duffy-Hester, A. M. (2000). The First R yesterday and today: U.S. elementary reading instruction practices reported by teachers and administrators. *Reading Research Quarterly, 35*(3), 338-377.

Balagopalan, S., & Subrahmanian, R. (2003). Dalit and Adivasi children in schools. *IDS Bulletin, 34*(1), 43-54.

Barnett, W. S. (1995). Long-term effects of early childhood programs on cognitive and school outcomes. *The future of children, 5*(3), 25-50. DOI: 10.2307/1602366

Batra, P. (2005). Voice and agency of teachers: Missing link in National Curriculum Framework 2005. *Economic and Political Weekly, XL*(40), 4347-4356.

Bernstein, B. (1964). Elaborated and restricted codes: Their social origins and some consequences. *American anthropologist, 66*(6_PART2), 55-69. DOI: 10.1525/aa.1964.66.suppl_3.02a00030

Bernsten, M. (2003). Collapse at the foundation: A study of literacy among third standard students in Western Maharashtra. *Journal of Indian School of Political Economy, 15*(4), 776-796.

Bond, G.L., & Dykstra, R. (1967). The cooperative research program on first-grade reading instruction. *Reading Research Quarterly, II, 4*, 5-142. Republished in 1997 in *Reading Research Quarterly, 32*, 348-427.

Béteille, A. (1991). *Society and politics in India: Essays in a comparative perspective*. London School of Economics Monographs on Social Anthropology. New Delhi: Oxford University Press.

Bloome, D., & Nieto, S. (1989). Children's understandings of basal readers. *Theory into Practice, 28*(4), 258-264.

Bromley, K. (2000). Teaching young children to be writers. In D.S. Strickland & L.M. Morrow (Eds.), *Beginning reading and writing*. (pp.111-120). New York: Teachers College Press

Browne, A. (2009). *Developing language and literacy 3-8*. London: Sage Publications.

Burgess, S. (2006). The development of phonological sensitivity. In D. Dickinson & S. B. Neuman (Eds.), *Handbook of Early Literacy Research: Volume II* (pp. 90-100). New York: Guilford Press.

Bruner, J. (1983). *Child's talk: Learning to use language*. New York: Norton

Bus, A., Van Ijzendoorn, M., & Pellegrini, A. (1995). Joint book reading makes for success in learning to read: A meta-analysis on intergenerational transmission of literacy. *Review of Educational Research, 65*, 1-21.

Cambourne, B. (2000). Conditions for literacy learning: Turning learning theory into classroom instruction: A minicase study. *The Reading Teacher, 54*(1), 414-417.

CARE India. (2010-14). *Patsy Collins Trust Fund Initiative supported Research in Shrawasti Uttar Pradesh, India*.

Census of India. (2001). Retrieved from http://www.censusindia.gov.in/2011-common/census_data_2001.html

Census of India. (2011). *State of literacy*. http://censusindia.gov.in/Census_And_You/literacy_and_level_of_education.aspx

Center on the Developing Child at Harvard University (2010). *The Foundations of Lifelong Health Are Built in Early Childhood*. <http://www.developingchild.harvard.edu>

Chall, J. (1967/1983). *Learning to read: The great debate*. New York: McGraw-Hill.

Chaudhary, L. (2009). Determinants of primary schooling in British India. *Journal of Economic history, 69*(1), 269.

- Chomsky, C., (1979). Write first read later. *Childhood Education* 47, 296-299.
- Chomsky, N. (1986). *Knowledge of language: Its nature, origin, and use*. Greenwood Publishing Group.
- Clay, M. M. (1967). The reading behavior of five-year-old children: A research report. *New Zealand Journal of Educational Studies*, 2(1), 11-31.
- Clay, M. M. (1979). *What did I write? Beginning writing behaviour*. Heinemann:Portsmouth, NH.
- Clay, M. M. (1991). *Becoming literate: The construction of inner control*. Portsmouth, NH: Heinemann
- Cole, A. D. (2003). *Knee to knee, eye to eye: Circling in on comprehension*. Portsmouth, NH: Heinemann
- Coll, C. G. (2005). Pathways to reading: The role of oral language in the transition to reading. *Developmental Psychology*, 41(2), 428-442
- Connor, C. M., Morrison, F. J., & Katch, L. E. (2004). Beyond the reading wars: Exploring the effect of child-instruction interactions on growth in early reading. *Scientific studies of reading*, 8(4), 305-336. DOI:10.1207/s1532799xssr0804_1
- Curtiss, S. (1977). *Genie: A psycholinguistic study of a modern day "wild child."* New York: Academic.
- Curtiss, S. (1989). "The independence and task-specificity of language". In *Interaction in Human Development*, M. Bornstein and J. Bruner (eds), pp. 105-138. Hillsdale, NJ: Erlbaum
- District Primary Education Programme. (1994). *District Primary Education Programme* Retrieved from <http://india.gov.in/my-government/schemes/district-primary-education-programme-dpep>
- Desai, S., & Kulkarni, V. (2008). Changing educational inequalities in India in the context of affirmative action. *Demography*, 45(2), 245-270. doi: 10.1353/dem.0.0001.
- Dickinson, D., McCabe, A., Anastasopoulos, L., Peisner-Feinberg, E. S., & Poe, M. D. (2003). The comprehensive language approach to early literacy: The interrelationships among vocabulary, phonological sensitivity, and print knowledge among preschool-aged children. *Journal of Educational Psychology*, 95, 465-481.
- Dholakia, R. H. (2010). Politics of low cost schooling and low teacher salary. *Economic & Political Weekly*, 45(18), 79.

Duncan, G. J., Dowsett, C. J., Claessens, A., Magnuson, K., Huston, A. C., Klebanov, P.; Pagan, L.S.; Feinstein, L.; Engel, M.; Brooks-Gunn, J.; Sexton, H.; Duckworth, K. & Japel, C. (2007). School readiness and later achievement. *Developmental psychology*, 43(6), 1428. DOI: 10.1037/0012-1649.43.6.1428

Eklavya. Books. Retrieved from <http://www.eklavya.in/books>.

Fitzgerald, J. (1999). What is this thing called “balance”? *The Reading Teacher*, 53(2), 100-107.

Fox, D. L., & Short, K. G. (2003). (Eds.) *Stories matter: The complexity of cultural authenticity in children's literature*. Urbana: National Council of Teachers of English.

Gambrell, L. B. (1996). Creating classroom cultures that foster reading motivation. *Reading Teacher*, 50, 14-25.

Garan, E. M. (2001). Beyond the Smoke and Mirrors-A Critique of the National Reading Panel Report on Phonics. *Phi Delta Kappan*, 82(7), 500.

Garcia, O. (2009). Education, multilingualism and translanguaging in the 21st century. *Social justice through multilingual education*. In *Multilingual education for social justice: Globalising the local*, (Eds). A. Mohanty, M. Panda, R. Phillipson, T. Skutnabb-Kangas. pp. 140-58. New Delhi: Orient Blackswan.

Garcia, O. (2011). The translanguaging of Latino kindergarteners. In K. Potowski, & J. Rothman (Eds.). *Bilingual youth: Spanish in English-speaking societies* (Vol. 42). (pp. 33-56). Philadelphia: John Benjamins Publishing.

Geekie, P., Cambourne, B., & Fitzsimmons, P. (1999). *Understanding literacy development*. Stoke-on-Trent. London: Trentham Books.

Goodman, K. S. (1967). Reading: A psycholinguistic guessing game. *Literacy Research and Instruction*, 6(4), 126-135.

Goodman, Y. M. (1978). Kid watching: An alternative to testing. *National Elementary Principal*, 57(4), 41-5.

Goodman, K. S., & Goodman, Y. M. (1977). Learning about psycholinguistic processes by analyzing oral reading. *Harvard Educational Review*, 47(3), 317-333.

Government of India. Education Commission, & Kothari, D. S. (1966). *Report of the Education Commission, 1964-66: Education and National Development*. Government of India Press.

Government of India (2009). *Right to Education Act*. Retrieved from <http://mhrd.gov.in/rte>

Government of India, Planning Commission. (2010). *Evaluation Report on Sarva Shiksha Abhiyan*. Retrieved from http://planningcommission.nic.in/reports/peoreport/peoevalu/peo_ssa2106.pdf; http://planningcommission.gov.in/aboutus/committee/wrkgrp12/hrd/wg_elementary1708.pdf

Griffith, P. L., & Olson, M. W. (1992). Phonemic awareness helps beginning readers break the code. *The Reading Teacher*, 45(7), 516-523.

Griffin, P., Burns, M. S., & Snow, C. E. (Eds.). (1998). *Preventing reading difficulties in young children*. National Academies Press.

Guthrie, J. T., Coddington, C. S., & Wigfield, A. (2009). Profiles of motivation for reading among African American and Caucasian students, *Journal of Literacy Research*, 41, 317-353.

Harp, B., & Brewer, J. A. (2000). Assessing reading and writing in the early years. In D. S. Strickland & L. M. Morrow (Eds.), *Beginning reading and writing* (Vol. 50), (pp. 154-167). New York: Teachers College Press.

Harris, V. J. (1992). (Ed.) *Teaching multicultural literature in grades K-8*. Norwood: Christopher-Gordon Pub.

Heath, S. B. (1983). *Ways with words: Language, life and work in communities and classrooms*. Cambridge University Press.

Heath, S. B. (1996). The sense of being literate: historical and cross-cultural. In R. Barr, M. L. Kamil, P. Mosenthal, & P. D. Pearson (Eds.), *Handbook of reading research*, Volume 2. pp. 3-25. Mahwah, NJ: Lawrence Erlbaum.

Hiebert, E.H. (1999). Text matters in learning to read. In N.D. Padak et al. (Eds.), *Distinguished educators on reading* (pp. 453-472). Newark, DE: IRA.

Hoff, E. (2006). How social contexts support and shape language development. *Developmental Review*, 26(1), 55-88.

Huttenlocher, J., Haight, W., Bryk, A., Seltzer, M., & Lyons, T. (1991). Early vocabulary growth: Relation to language input and gender. *Developmental psychology*, 27(2), 236. DOI: 10.1037/0012-1649.27.2.236

Jayaram, K. (2008). Early Literacy Project—Explorations and Reflections Part 2: Interventions in Hindi Classrooms. *Contemporary Education Dialogue*, 5(3), 175-212.

Jayaram, K. (2009). *Building foundations for reading and writing with understanding in young learners from marginalized communities*, Retrieved from: <http://www.oelp.org/images/Articles/5%20building%20foundations%20in%20r%20w%20with%20understanding.pdf>

Jhingran, D. (2005). *Language disadvantage: The learning challenge in primary education*. New Delhi: S.B. Nangia APH.

Johnson, J. S., & Newport, E. L. (1989). Critical period effects in second language learning: The influence of maturational state on the acquisition of English as a second language. *Cognitive psychology*, 21(1), 60-99.

Kaul, V. Bhargarh, A and Sharma, S. (2013). *Quality and Diversity in early Childhood Education*. Unpublished Research, Centre for Early Childhood Education and Development, Ambedkar University Delhi.

Katha. *Children's books*. Retrieved from <http://www.katha.org/site/katha-bookstore/>

Kennedy, E., Dunphy, E., Dwyer, B., Hayes, G., McPhillips, T., Marsh, J., O'Connor, M. & Shiel, G. (2012). Literacy in early childhood and primary education (3-8 years). *National Council for Curriculum and Assessment*.

Kuhl, P. K. (2007). Is speech learning 'gated' by the social brain? *Developmental science*, 10(1), 110-120.

Kingdon, G. G., & Sipahimalani-Rao, V. (2010). Para-teachers in India: Status and impact. *Economic and Political weekly*, 45(12), 59-67.

Krashen, S. (2001). More smoke and mirrors: A critique of the National Reading Panel report on fluency. *Phi Delta Kappan*, 83(2), 119-123.

Kumaravadivelu, B. (1993). Maximizing learning potential in the communicative classroom. *ELT Journal*, 47(1), 12-21.

Kumaravadivelu, B. (2001). Toward a postmethod pedagogy. *Tesol Quarterly*, 35(4), 537-560.

Kumaravadivelu (2002). *Beyond Methods: Macrostrategies for teaching language*. Yale University Press.

LaBerge, D., & Samuels, S. J. (1974). Toward a theory of automatic information processing in reading. *Cognitive psychology*, 6(2), 293-323.

Lamendella, J. T. (1977). General principles of neurofunctional organization and their manifestation in primary and nonprimary language acquisition. *Language learning*, 27(1), 155-196.

Lenneberg, E. H. (1967). *Biological foundations of language*. New York: Wiley.

Lonigan, C. (2006). Conceptualizing phonological processing skills in pre-readers. In D. Dickinson & S. B. Neuman (Eds.), *Handbook of Early Literacy Research: Volume II (Vol. II)*, pp. 77-89). New York: Guilford.

- Luke, A. (1995). When basic skills and information processing just aren't enough: Rethinking reading in new times. *The Teachers College Record*, 97(1), 95-115.
- Luke, A. (2000). Critical literacy in Australia: A matter of context and standpoint. *Journal of Adolescent & Adult Literacy*, 43(5), 448-461.
- Luke, A. (2004). On the material consequences of literacy. *Language and Education*, 18(4), 331-335.
- Luke, A., & Freebody, P. (1999). Further notes on the four resources model. *Reading online*, 3. Retrieved from <http://www.readingonline.org/research/lukefreebody.html>.
- Mallikarjun, B. (2004). Indian multilingualism, language policy and the digital divide. *Language in India*, 4(4). Retrieved from <http://www.ciillibrary.org:8000/ciil/repository/mallikarjun/m24.pdf>
- Marinova-Todd, S. H., Marshall, D. B., & Snow, C. E. (2000). Three misconceptions about age and L2 learning. *TESOL quarterly*, 34(1), 9-34.
- Mehler, J., P. Jusczyk, G. Lambertz, M. Halsted, J. Bertoncini and C. Amiel-Tison. (1988). A precursor of language acquisition in young infants. *Cognition*, 29, 143-178.
- Menon, S. (In press). Curricular materials in early language and literacy classrooms in Karnataka and Maharashtra. In Navani, D. (Ed.) *Understanding, Developing and Analyzing Teaching Learning Resources: A Reader for Elementary Education*.
- Menon, S. (2014). Language and literacy learning in early years: What should it look like? *Learning Curve*, XXII, 50-53.
- Menon, S., Viswanatha, V. & Sahi, J. (2014). Teaching in two tongues: Rethinking the role of language(s) in teacher education in India. *Contemporary Education Dialogue*, 11(1), 41-65.
- Ministry of Human Resource Development. (2014). *Padhe Bharat Bhade Bharat: Early reading and writing with comprehension & early mathematics programme*. Retrieved from <http://ssa.nic.in/pabminutes-documents/Padhe%20Bharat%20Badhe%20Bharat.pdf>
- Ministry of Women and Child Development (2013). *National Early Childhood Care and Education*. Government of India.
- Moll, L. C., Amanti, C., Neff, D., & Gonzalez, N. (1992). Funds of knowledge for teaching: Using a qualitative approach to connect home and classrooms. *Theory into Practice*, 31(1), 132-141.
- Nag, S. 2007. Early reading in Kannada: the pace of acquisition of orthographic knowledge and phonemic awareness. *Journal of Research in Reading*, 30(1), 7-22

Nag, S., Caravolas, M., & Snowling, M. J. (2011). Beyond alphabetic processes: literacy and its acquisition in the alphasyllabic languages. *Reading and Writing, 24*(6), 615-622.

Nag, S., & Snowling, M. J. (2012). Reading in an alphasyllabary: Implications for a language universal theory of learning to read. *Scientific Studies of Reading, 16*(5), 404-423.

Nambissan, G. B. (1996). Equity in education? Schooling of Dalit children in India. *Economic and Political Weekly, 31*(16/17), 1011-1024.

Nambissan, G. B. (2000). Dealing with deprivation. *Seminar*. Sept. (pp. 50-55).

Nambissan, G. B. (2010). The global economic crisis, poverty and education: a perspective from India. *Journal of Education policy, 25*(6), 729-737.

National Book Trust. (2016). *National Centre for Children's Literature*. Ministry of Human Resource Development, Government of India. Retrieved from http://www.nbtindia.gov.in/readersclub__17__nccl-club.nbt

National Council of Educational Research and Training (2000). *National Curriculum Framework for School Education*. New Delhi.

National Council of Educational Research and Training. (2014). *Barkha Series*. Retrieved from <http://www.ncert.nic.in/departments/nie/dee/publication/Barkha.html>

National Council of Educational Research and Training. (2014). *Learning indicators*. (classes 1 & 2).

National Council of Educational Research and Training (2005). *National Curriculum Framework*. New Delhi. Retrieved from <http://www.ncert.nic.in/rightside/links/pdf/framework/english/nf2005.pdf>

National Council of Educational Research and Training. (2006). *National Focus Group on Teaching of Indian Languages*. Position Paper. New Delhi. Retrieved from http://www.ncert.nic.in/new_ncert/ncert/rightside/links/pdf/focus_group/Indian_Languages.pdf

National Council of Educational Research and Training. (2014). *Syllabus for classes at the elementary level*. Available at <http://www.ncert.nic.in/rightside/links/syllabus.html> (classes 1 and 2)

National Council for Teacher Education. (2009/10). *National Curriculum Framework for Teacher Education: Towards Preparing Professional and Humane Teacher*. NCTE: New Delhi

National Early Literacy Panel. (2008). *Developing early literacy: A scientific synthesis of early literacy development and implications for intervention*. National Centre for Family

Literacy, National Institute for Literacy. Available at <http://lincs.ed.gov/publications/pdf/NELPReport09.pdf>

National Reading Panel (US), National Institute of Child Health, & Human Development (US). (2000). *Teaching children to read: An evidence-based assessment of the scientific research literature on reading and its implications for reading instruction*. National Institute of Child Health and Human Development, National Institutes of Health. Available at <http://www.nichd.nih.gov/publications/pubs/nrp/documents/report.pdf>

Ninio, A., & Bruner, J. (1978). The achievement and antecedents of labelling. *Journal of child language*, 5(01), 1-15. doi:10.1017/S0305000900001896.

Nodelman, P. (1992). The other: Orientalism, colonialism, and children's literature. *Children's Literature Association Quarterly*, 317(1), 29-35.

OECD Programme for International Student Assessment (PISA). (2009). *PISA 2009*. Retrieved from <http://www.acer.edu.au/media/article/acer-releases-results-of-pisa-2009-participant-economies>

Ogletree, E. J. (1976). A comparative study of the effectiveness of DISTAR and eclectic reading methods for innercity children. (ERIC No. ED 146544).

Pellegrini, A. D., & Galda, L. (2000). Children's pretend play and literacy. In D. S. Strickland & L. M. Morrow (Eds.), *Beginning reading and writing* (Vol. 50), (pp. 58-65). New York: Teachers College Press.

Piaget, J. (1959). *The language and thought of the child* (Vol. 5). Psychology Press.

Prasad, G. J. V. (2010). A minute stretching into centuries: Macaulay, English, and India. In M. Paranjape & G.J.V. Prasad (Eds.), *Indian English and 'vernacular India*, (pp. 3-17). New Delhi: Dorling Kindersley.

Ramamoorthy, K. (2002). *Literacy in the context of constitution of India*. Ministry of Law Justice and Company Affairs.

Rasinski, T. (2004). Creating fluent readers. *Educational Leadership*, 61(6), 46-51.

Ramanathan, V. (2007). A critical discussion of the English-Vernacular divide in India. In J. Cummin & C. Davison (Eds.) *International Handbook of English Language Teaching*. (pp. 51-61). Springer: US.

RAND Reading Study Group. (2002). Reading for understanding: Towards an R&D program in reading comprehension. Retrieved from <http://www.rand.org/multi/achievementforall/reading/readreport.htm>, p. 11.

Rao, N., Cheng, K. M., & Narain, K. (2003). Primary schooling in China and India: Understanding how socio-contextual factors moderate the role of the state. *International Review of Education*, 49(1-2), 153-176.

Reutzel, D. R., Smith, J. A., & Fawson, P. C. (2005). An evaluation of two approaches for teaching reading comprehension strategies in the primary years using science information texts. *Early Childhood Research Quarterly*, 20(3), 276-305. DOI:10.1016/j.ecresq.2005.07.002

Rogoff, B. (1990). *Apprenticeship in thinking: Cognitive development in social context*. Oxford University Press.

Rupley, W. H., Blair, T. R., & Nichols, W. D. (2009). Effective reading instruction for struggling readers: The role of direct/explicit teaching. *Reading & Writing Quarterly*, 25(2-3), 125-138. DOI: 10.1080/10573560802683523

Sarva Siksha Abhiyan: Programme for Universalization of elementary education in India. (2001). New Delhi. Ministry of Human Resource Development, Department of Elementary Education and Literacy. Retrieved from <http://ssa.nic.in/>

Scarborough, S. H. (2009). Connecting early language and literacy to later reading (dis)abilities: Evidence, theory and practice. In Fletcher-Campbell, F., Soler, J., & Reid, G. (Eds.), *Approaching difficulties in literacy development: assessment, pedagogy and programmes* (pp. 23-38). New York: Sage.

Schatschneider, C., Fletcher, J. M., Francis, D. J., Carlson, C. D., & Foorman, B. R. (2004). Kindergarten prediction of reading skills: A longitudinal comparative analysis. *Journal of Educational Psychology*, 96(2), 265-282.

Sen, R.S. (forthcoming). Literacy in Pre-primary and Class 1: Processes of teaching and learning in a trilingual environment. In N. Rao (ed.) *Disciplinary dialogues on social change: Gender, early childhood and theatre*. Academic Foundation. New Delhi.

Sipe, L. R. (2001). Invention, convention, and intervention: Invented spelling and the teacher's role. *The Reading Teacher*, 55(3), 264-273.

Shuell, T. J. (1986). Cognitive conceptions of learning. *Review of educational research*, 56(4), 411-436.

Sinha, S. (2012). Reading without meaning: The dilemma of Indian classrooms. *Language and Language Teaching*, 1(1), 22-26.

Snow, C. E., Burns, M. S., & Griffin, P. (Eds.). (1998). *Preventing reading difficulties in young children*. Washington, D.C.: National Academy Press.

Street, B. V. (1984). *Literacy in theory and practice: Cambridge Studies in oral and literate culture*. New York: Cambridge University Press.

Street, B. (1995) *Social Literacies*. Longman: London

Street, B. (2003). What's "new" in New Literacy Studies? Critical approaches to literacy in theory and practice. *Current issues in comparative education*, 5(2), 77-91.

Sulzby, E., & Teale, W. H. (Eds.). (1988). *Emergent literacy: Writing and reading*. Ablex Publishing Corporation.

Teale, W. H., & Sulzby, E. (Eds.). (1986). *Emergent literacy: Writing and reading*. Norwood: NJ: Ablex Publishing Corporation.

Tomasello, M. (2003). *Constructing a language: A usage-based approach to child language acquisition*.

United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization (UNESCO). Adult and youth literacy, 1990-2015: Analysis of data for 41 selected countries (2012). Retrieved from: <http://www.uis.unesco.org/Education/Documents/UIS-literacy-statistics-1990-2015-en.pdf>

van den Broek, P., & Kremer, K. (2000). The mind in action: What it means to comprehend during reading. *Reading for meaning: Fostering comprehension in the middle grades*, 1-31.

Vandervelden, M. C., & Siegel, L. S. (1997). Teaching phonological processing skills in early literacy: A developmental approach. *Learning Disability Quarterly*, 20(2), 63-81.

Vanishree, V. M. (2011). Provision for linguistic diversity and linguistic minorities in India. *Language in India*, 11(2). Retrieved from: <http://www.languageinindia.com/feb2011/vanishreemastersfinal.pdf>

Villaume, S. K., & Wilson, L. C. (1989). Preschool children's explorations of letters in their own names. *Applied Psycholinguistics*, 10(03), 283-300.

Vygotsky, L. S. (1962/1986). *Thought and language*. Cambridge, Massachusetts: MIT press.

Wells, G. (1986). *The meaning makers: Children learning language and using language to learn*. Portsmouth, NH: Heinemann Educational Books, Inc.

Werker, J. F., & Tees, R. C. (1984). Cross-language speech perception: Evidence for perceptual reorganization during the first year of life. *Infant behavior and development*, 7(1), 49-63.



परिशिष्ट

संतुलित/समग्र साक्षरता कार्यक्रम में उपयोग में आने वाले शिक्षण की रूपरेखाएं

गतिविधियां	परिभाषा	उद्देश्य	सामग्री
जोर से बोलकर पढ़ना	शिक्षक प्रतिदिन ऐसी पाठ्य सामग्री में से जोर से पढ़ते हैं जो विद्यार्थियों की श्रवण क्षमता के तल पर हो लेकिन उनके पढ़ने के स्तर से ऊंचा हो।	विद्यार्थियों के सुनने के कौशलों, पढ़ने की समझ और शब्दावली को बेहतर बनाने में मदद करना। इससे एक साक्षरता से भरे-पूरे परिवेश का निर्माण करने में मदद मिलती है और विद्यार्थी सुनी हुई सरल कहानियों को फिर से सुना सकते हैं।	बड़ी/छोटी किताबें
प्रतिरूप-आधारित लेखन	विद्यार्थियों के समक्ष किसी पाठ की रचना करते हुए शिक्षक/शिक्षिका जोर से सोचकर लिखने के कृत्य को प्रदर्शित करता है/करती है।	विद्यार्थियों को मौका देना कि वे लिखने की प्रक्रिया के साथ चलने वाली सोचने की प्रक्रिया को सुन सकें, जैसे विषय का चयन, रचना को शुरू कैसे करना है, बेहतर शब्द की तलाश, दोहराना, और संपादन।	लिखने के लिए बड़ा बोर्ड, पेन
साझा पढ़ना	ऐसा कोई पाठ पढ़ना जो विद्यार्थियों के पढ़ने के स्तर से ऊंचा हो। शिक्षक अपने पढ़ने की गति को इतना रखता है कि विद्यार्थी भी पढ़ने में शामिल हो सकें। या तो कोई बड़ी किताब पढ़ी जाती है या फिर सभी विद्यार्थियों के पास पढ़ने की सामग्री की प्रतिलिपि होती है।	बच्चों की रुचियों को आगे बढ़ाना और कहानियों, कविताओं, तुकबंदियों (राइम्स), गीतों में उनकी दिलचस्पी और सराहने की क्षमता को बढ़ाना।	बड़ी किताबें, चार्ट, रचना संकलन, पत्रिकाएं, कहानियां।
साझा लेखन	पूरी कक्षा की या छोटे से समूह की गतिविधि जिसमें शिक्षक और विद्यार्थी रचना प्रक्रिया को साझा करते हैं। कक्षा क्या कहना चाहती है, इसे दर्ज कर शिक्षक छापाई की अवधारणाओं को बल देते हैं।	संरचित बातचीत के माध्यम से लिखने की प्रक्रिया के बारे में सीखने में विद्यार्थियों की मदद करना। इस संदेश की विषयवस्तु कोई दैनिक संदेश हो सकता है, साहित्य पर की गई प्रतिक्रिया हो सकती है, सूचियां हो सकती हैं इत्यादि।	लिखने का बड़ा बोर्ड, पेन

गतिविधियां	परिभाषा	उद्देश्य	सामग्री
मार्गदर्शित पढ़ना	शिक्षक विद्यार्थियों के छोटे से समूह के साथ (छोटे-छोटे अंश) पढ़ता है। प्रत्येक विद्यार्थी के पास पाठ की एक प्रतिलिपि होती है और वह उसे स्वतंत्र रूप से पढ़ता है (मौखिक रूप से या मन में) और शिक्षक उनके प्रदर्शन का अवलोकन करते हैं, उन्हें प्रशिक्षित करते हैं, बीच में बोलकर सुधार करवाते हैं, और फिर मूल्यांकन करते हैं। शिक्षक विद्यार्थियों को पाठ के बारे में समीक्षात्मक ढंग से सोचने के लिए प्रेरित करते हैं और फिर विद्यार्थियों के साथ उसकी चर्चा भी करते हैं।	खुद से पढ़ने की योजनाओं के निर्माण को सहयोग और प्रोत्साहन देने के लिए।	छोटी किताबें, लघु कथाएं, पत्रिकाएं, अखबार के लेख
मार्गदर्शित लेखन	शिक्षक पूरी कक्षा के साथ या फिर एक सी जरूरतों वाले छोटे से समूह के साथ काम करता है और किसी रचना को लिखते समय उनका मार्गदर्शन करता है।	विद्यार्थियों के किसी छोटे से समूह को लिखने के लक्ष्य-केंद्रित निर्देश देना ताकि वे स्वतंत्र रूप से लिखना सीख सकें।	छोटी किताबें
अपने से पढ़ना	विद्यार्थी 95/100 प्रतिशत की शुद्धता के साथ पढ़ते हैं, और वे अपनी पसंद की किताबें चुनते हैं और पाठ की चुनौतियों का सामना करते हुए आगे बढ़ने की जिम्मेदारी लेते हैं। शिक्षक की भूमिका उनका अवलोकन करने की, उनके काम को स्वीकार करने की तथा अपनी प्रतिक्रिया देने की होती है।	पढ़ने की योजनाओं को लागू करने, प्रवाह विकसित करने, और पाठकों के रूप में आत्मविश्वास पैदा करने, तथा पढ़ने की उपलब्धियों को और बेहतर बनाने के लिए अपने से प्रयास करने के मौके उपलब्ध करवाना।	कक्षा के पुस्तकालय, किताबों की अदल-बदल और बुक क्लब
अपने से लिखना	विद्यार्थी रोज जरूरत लिखकर, लिखने के लिए दिए गए कार्यों के द्वारा, कक्षा के अपने साथियों, शिक्षकों और/या माता-पिता के लिए छोटी टिप्पणियों को लिखने के द्वारा किया जाने वाला लेखन। इससे विद्यार्थियों को अपने लेखन कौशलों को मांजने का मौका मिलता है।	विद्यार्थियों को लिखित भाषा के साथ प्रयोग करने के लिए, और उसके उपयोगों की पड़ताल करने के लिए प्रोत्साहित करना।	कागज, पेन